इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKG-171
भारतीय सौन्दर्यशास्त्र

BSKG-171
भारतीय सौन्दर्यशास्त्र

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र

खण्ड 1	सौन्दर्यशास्त्र : स्वरूप और भाग	7
खण्ड 2	रस और उसकी प्रक्रिया	67
खण्ड 3	सौन्दर्य तत्व	133
खण्ड 4	सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक	195

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
श्री लाल बहादुर शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

प्रो. आनन्द कुमार श्रीवास्तव, अध्यक्ष संस्कृत विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ रंजन कुमार त्रिपाठी
सह आचार्य, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रो. सत्यकाम
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. रमाकान्त पाण्डेय
निदेशक ,मुक्त स्वाध्याय पीठ
राष्ट्रीय संस्कृत सस्थान, नई दिल्ली

पाठयक्रम सम्पादक

डॉ. पुष्पा
सह आचार्य, संस्कृत संकाय, मानविकी विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

कार्यक्रम व पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. पुष्पा
सह आचार्य, संस्कृत संकाय
इग्नू , नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या
डॉ. देशराज, सहायक आचार्य, संस्कृत संकाय, कालिंदी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, (नई दिल्ली)	1,2,3,6,13,14,15,16,17,18
डॉ.विश्वमोहनी, प्राचार्य, कन्या विद्यापीठ इन्टर कॉलेज, कैमगंज, फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश)	4,5,12,
डॉ. उमेश शुक्ल, सहायक आचार्य, संस्कृत, लाड देवी शर्मा पंचोली आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, भीलवाड़ा, (राजस्थान)	7,8,9,10,11

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव
सा. नि. एवं वि. प्र.,इग्नू, नई दिल्ली

जनवरी, 2023

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2023

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्ततु करने की अनुमति नहीं है। मानविकी विद्यापीठ एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बार में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढी़ नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गाधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की आरे से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यटूर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक :

पाठ्यक्रम परिचय

स्नातक कला उपाधि संस्कृत (बी.ए.संस्कृत ऑनर्स कार्यक्रम) (BASKH) के अन्तर्गत आप भारतीय सौन्दर्यशास्त्र BSKG-171 पाठ्यक्रम का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए कुल 18 इकाइयां निर्धारित की गई हैं । यह पाठ्यक्रम 6 क्रेडिट का है। बी.ए.संस्कृत ऑनर्स के इस पाठ्यक्रम में आपको चार खण्डों में विभक्त 18 इकाइयों का अध्ययन करना है। इन अट्ठारह इकाइयों में आप निम्नलिखित विषयवस्तु का अध्ययन करेंगे –

खण्ड 1 सौन्दर्यशास्त्रः स्वरूप और भाग नामक प्रथम खण्ड में कुल 6 इकाइयां हैं जिसमें आप सौन्दर्य की परिभाषा व सामान्य विवेचन के भाग–वय, रूप, वचन, हाव आदि से परिचित होंगे। आपको सौन्दर्य शब्द के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों को जानने का अवसर प्राप्त होगा। इसी प्रकार भारतीय सौन्दर्यदर्शन ,पाश्चात्य सौन्दर्यदर्शन तथा सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखा से आप भली–भाँति परिचित हो सकेंगे।

खण्ड 2. रस और उसकी प्रक्रिया नामक दूसरा खण्ड 5 इकाइयों में विभक्त है, जिसमें आप साहित्यशास्त्र के अनुसार रस का स्वरूप क्या है? रस ,भाव, विभाव, अनुभाव इत्यादि के विषय में अध्ययन करेंगे और भरत के अनुसार रसों की संख्या और विवेचन ,रस विषयक सिद्धांत , रसानुभूति की चार मानसिक अवस्थाएँ– विकास, विस्तार, क्षोभ और विक्षेप के विषय में अध्ययन करेंगे।

खण्ड 3 सौन्दर्य तत्व नामक इस खण्ड में आप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के रूप में ललितकला ,वास्तुकला, मूर्तिकला ,चित्रकला,संगीत कला और काव्यकला का अध्ययन करेंगे। साहित्य के प्रमुख सौंदर्यात्मक तत्व अलंकार, रीति, ध्वनि ,वक्रोक्ति और औचित्य को आत्मसात करने का आपको भरपूर अवसर उपलब्ध होगा ।

खण्ड 4 सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक प्रस्तुत पाठ्यक्रम का यह अंतिम खण्ड है। सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक शीर्षक के अन्तर्गत आप प्रमुख विचारकों का दो इकाइयों में अध्ययन करेंगे। जिसमें आप सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक भाग 1 में भरत ,भामह, वामन, दण्डी, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त और भाग 2 में कुन्तक ,महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, विश्वनाथ और जगन्नाथ के विचारों का अध्ययन करेंगे। खण्ड 4 की अंतिम इकाई के रूप में आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सांस्कृतिक, सामाजिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण का अध्ययन करेंगे।

आशा है कि स्नातक कला उपाधि संस्कृत कार्यक्रम के इस पाठ्यक्रम का अध्ययन करने के पश्चात आपके भारतीय सौन्दर्यशास्त्रीय संबंधित दृष्टिकोण में विस्तार हुआ होगा। आप सौन्दर्यशास्त्र के विविध पक्षों को भलीभांति समझ गए होंगे, साथ ही साथ प्रस्तुत पाठ्यक्रम द्वारा आपके भाषा संबंधी सभी कौशलों में वृद्धि हुई होगी जिससे आप भाषा संबंधित त्रुटियों का निवारण करने में समर्थ होंगे। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के व्यापक कलेवर को विविध रूप में जानने व समझने और उसके प्रति आपकी रूचि और उत्साहवर्धन करने में यह पाठ्यक्रम अत्यंत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय सूची

खण्ड 1	**सौन्दर्यशास्त्र : स्वरूप और भाग**	**7**
इकाई 1.	सौन्दर्य की परिभाषा व सामान्य विवेचन	9
इकाई 2.	सौन्दर्य के भाग– वय, रूप, वचन, हाव आदि	19
इकाई 3 .	सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची पर विचार	30
इकाई 4.	भारतीय सौन्दर्य दर्शन	41
इकाई 5.	पाश्चात्य सौन्दर्य दर्शन	50
इकाई 6.	सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखा	58
खण्ड 2	**रस और उसकी प्रक्रिया**	**67**
इकाई 7.	साहित्यशास्त्र के अनुसार रस का स्वरूप	69
इकाई 8	रस : भाव, विभाव, अनुभाव इत्यादि	80
इकाई 9	भरत के अनुसार रसों की संख्या और विवेचन	92
इकाई 10	रस विषयक सिद्धान्त	109
इकाई 11	रसानुभूति की चार मानसिक अवस्थाएँ – विकास, विस्तार, क्षोभ और विक्षेप	117
खण्ड 3	**सौन्दर्य तत्व**	**133**
इकाई 12	सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के रूप में ललितकला : वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला	135
इकाई 13	सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के रूप में ललितकला : संगीतकला और काव्यकला	145
इकाई 14	साहित्य में प्रमुख सौंदर्यात्मक तत्व – अलंकार ,रीति और ध्वनि	158
इकाई 15	साहित्य में प्रमुख सौंदर्यात्मक तत्व – वक्रोक्ति और औचित्य	177
खण्ड 4	**सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक**	**195**
इकाई 16	सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक (भाग–1) : भरत, भामह , वामन, दण्डी, आनंदवर्धन ,अभिनवगुप्त	197
इकाई 17	सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक (भाग–2) : कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेंद्र, विश्वनाथ और जगन्नाथ	211
इकाई 18	अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सांस्कृतिक ,सामाजिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण	220

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 1
सौन्दर्यशास्त्र : स्वरूप और भाग

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 सौन्दर्य की परिभाषा व सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सौन्दर्य की परिभाषा

1.3 सौन्दर्य का सामान्य परिचय

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप–

- पाश्चात्य एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में सौन्दर्य की परिभाषा का अध्ययन कर पायेंगे।
- वैदिक काल में सौन्दर्य के स्वरूप का अध्ययन कर पायेंगे।
- सौन्दर्य का सामान्य परिचय के अन्तर्गत रामायण काल में इसके स्वरूप का अध्ययन कर पायेंगे।
- सौन्दर्य का सामान्य परिचय के अन्तर्गत महाभारत काल में सौन्दर्य के स्वरूप का अध्ययन कर पायेंगे।
- सौन्दर्य का सामान्य परिचय के अन्तर्गत भक्ति काल में इसके स्वरूप का अध्ययन कर पायेंगे।
- इसमें प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली के बारें में जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सौन्दर्यशास्त्र संवेदनात्मक–भावात्मक गुण–धर्म और मूल्यों का अध्ययन है। कला, संस्कृति और प्रकृति का प्रति अंकन ही सौन्दर्यशास्त्र है। सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें कलात्मक कृतियों, रचनाओं आदि से अभिव्यक्त होने वाला अथवा उसमें निहित रहने वाले सौन्दर्य का तात्त्विक, दार्शनिक और मार्मिक विवेचन होता है। किसी सुन्दर वस्तु को देखकर या सुन्दर वस्तु के बारें में सुनकर हमारे मन में जो आनन्ददायिनी अनुभूति होती है, वहीं सौन्दर्य है। उसी सौन्दर्य को किसी के जीवन की अन्यान्य अनुभूतियों के साथ उसका समन्वय स्थापित करना इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य होता है। खण्ड–1 की इकाई–1 में सौन्दर्य की परिभाषाओं तथा विभिन्न काल में सौन्दर्य के स्वरूप को स्पष्ट किया जायेगा।

सौन्दर्यशास्त्र संवेदनात्मक–भावात्मक गुण–धर्म और मूल्यों का अध्ययन है। कला, संस्कृति और प्रकृति का प्रति अंकन ही सौन्दर्यशास्त्र है। सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें कलात्मक कृतियों, रचनाओं आदि से अभिव्यक्त होने वाला अथवा उसमें निहित

रहने वाले सौन्दर्य का तात्विक, दार्शनिक और मार्मिक विवेचन होता है। किसी सुन्दर वस्तु को देखकर या सुन्दर वस्तु के बारें में सुनकर हमारे मन में जो आनन्ददायिनी अनुभूति होती है वहीं सौन्दर्य है। उसी सौन्दर्य को किसी के जीवन की अन्यान्य अनुभूतियों के साथ उसका समन्वय स्थापित करना इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य होता है। सौन्दर्य वह गुण या गुणों का संश्लेश है जो इन्द्रियों को तीव्र आनन्द प्रदान करता है प्रधानतः चाक्षुश आनन्द तथा अन्य इन्द्रियों तथा बौद्धिक भावनाओं को आनन्द प्रदान करता है। आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के कारण आज मनुष्य असम्भव को सम्भव करने में समर्थ हो पाता है और हर प्रकार के सुविधा का भागी बन गया है। आज विज्ञान प्रकृति के नियम के छोड़कर एक जीव कोश से करोड़ों कोश वाला प्राणी बना सकता है। यह सब मनुष्य की बुद्धि का कमाल है, फिर भी विज्ञान ने मनुष्य को लाभ से ज्यादा नुकसान ही पहुँचाया है क्योंकि बुद्धि पर ज्यादा बल देने के कारण मनुष्य ह्रदय पक्ष से छूटता गया है और जिसके कारण आज सम्बन्धों में प्रतिकूलता आ गयी है। आज वह यंत्र से प्यार कर सकता है पर वस्तु जगत, पक्षी जगत, मनुष्य जगत से नहीं। मनुष्य की बुद्धि ने उसे यांत्रिक बना दिया है। वह संसार से सम्बन्ध जोड़ने के लिए नाकामयाब हो रहा है। किन्तु सौन्दर्य की खोज के लिए मनुष्य को यंत्र से प्यार न करते हुए संसार के सम्पूर्ण प्राणियों से प्रेम करना होगा। साधारणतः हम सौन्दर्य को वस्तु और प्राणी के बाहरी रूप का विषय मान लेते है किन्तु इसके ब्राह्य और आन्तरिक रूपों में सौन्दर्य के अवस्थान को लेकर पुराने जमाने से लेकर आजतक बहुत सारे चिन्तकों ने इस पर अपने मत प्रकट किए हैं। इस इकाई में सौन्दर्य की परिभाषाओं तथा विभिन्न काल में सौन्दर्य के स्वरूप को स्पष्ट किया जायेगा।

1.2 सौन्दर्य की परिभाषा

सौन्दर्य स्वयं सुधा है और हर क्षण परिवर्तित होता रहता है। मनुष्य इस जगत के कण–कण में सौन्दर्य की मनोहारी छवि को विस्मय विमुग्ध होकर निहरता रहता है। सौन्दर्य एक ऐसा दिव्य तत्व है जो मनुष्य की चेतना को जन्म से ही आकर्षित करने लगता है। सौन्दर्य चिन्तन में रूचि भेद के कारण अपना–अपना दृष्टिकोण और अपनी–अपनी सूझ की विविधता के कारण सौन्दर्य की परिभाषाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है। आचार्य शंकुक के मतानुसार नायक में रस की अवस्थिति और नट में रस की अनुभूति मानी जाती है। प्रमाता (सामाजिक, द्रष्टा या पाठक) काव्यगत पात्रों एवं नटों को अभिन्न मान लेता है और नटों में ही रस की स्थिति का अनुमान कर लेता है। परिणामस्वरुप नटों की तरह ही वह भी रसानन्द प्राप्त करता है। यही रसानन्द ही शंकुक का "सौन्दर्यानन्द है।"

सौन्दर्यशास्त्र व्यापक रूप में सौन्दय का शास्त्र है, जिसमें उपयोगी और ललित सभी कलाओं संगीत, साहित्य, रंगमंच, नृत्य, फिल्म, पेटिंग, वास्तु, मूर्ति आदि के साथ–साथ प्रकृति, मानव–जीवन और जगत के प्रत्येक क्षेत्र में उपस्थित आनुभूतिक एवं अभिव्यक्तिक सौन्दर्य का अध्ययन होता है। सौन्दर्यशास्त्र का यह व्यापक स्वरूप वस्तुतः सौन्दर्य की व्यापकता के ही कारण है।

पाश्चात्य परिभाषा–

प्लेटो के अनुसार– सुन्दर, शिव और सत्य एक है। सुन्दर 'परम' है और पूर्ण है तथा सुन्दर के लिए नैतिक होना आवश्यक है।

अरस्तू के अनुसार–अरस्तू का प्रसिद्ध ग्रन्थ पोयटिक्स है। इनका मानना है कि सौन्दर्य न तो अतिशय विशाल होता है और न ही अतिशय लघु होता है बल्कि दोनों के मध्य का औसत होता है। उन्होंने स्पष्टतः लिखा है कि सौन्दर्य का दर्शन नेत्रों से

होता है।

प्लूटार्क के अनुसार–सौन्दर्य एक प्रकार की कलात्मक कुशलता है।

बाउमगार्तेन के अनुसार– प्रकृति सौन्दर्य का चरम प्रतिमान है इसलिए प्रकृति का अनुकरण ही सौन्दर्य–सृजन है। सौन्दर्यशास्त्र ऐन्द्रिय ज्ञान का विज्ञान है। ऐन्द्रीय माध्यम से पूर्णत्व की अनुभूति सौन्दर्य है।

भारतीय परिभाषा–

भारतीय विद्वानों और कवियों की सौन्दर्य के विष्य में मान्यतायें इस प्रकार है। महाकवि माघ ने कहा है कि–**'क्षणै–क्षणै यन्नवतामुपैती तदैव रूपं रमणीयतायाः'** जो क्षण–क्षण नवीनता प्राप्त करें, वही रमणीयता का रूप है। श्रीमद् रूपगोस्वामी ने सौन्दर्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि–**'भवेत्यसौन्दर्यमंगानां सन्निवेशो यथोचितम्।'** इसके पश्चात् कालिदास के अनुसार–**'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारूता।'** पंडितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रंथ रसगंगाधर में अवश्य ही रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य की संज्ञा दी थी, किन्तु वह भी रमणीयता के स्वरूप के सम्बन्ध में कोई गम्भीर विचार प्रस्तुत न कर सके। इस वर्ग के विचारकों का मत है कि काव्य एक ललित कला है, अतः काव्यशास्त्र भी सौन्दर्यशास्त्र की एक शाखा है। दोनों के पार्थक्य को स्पष्ट करते हुए डॉ. बलदेव उपाध्याय कहते है कि–सौन्दर्य को अत्यन्त महत्वशाली मानने पर भी हमारा शास्त्र 'सौन्दर्यशास्त्र' के नाम से अभिहित होते–होते बच गया। ऐसा होने पर यह पाश्चात्यों के 'एस्थेटिक्स' का पर्यायवाची बन गया होता। परन्तु सौन्दर्यशास्त्र का क्षेत्र साहित्य शास्त्र के क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक और विशाल है। साहित्यशास्त्र तो केवल शब्द के माध्यम द्वारा निर्मित कला को ही द्योतित करता है, परन्तु सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं जैसे वास्तु, चित्र तथा संगीत आदि में निर्दिष्ट चारुत्व को भी अपने क्षेत्र के अन्तर्गत करता है। अतः दोनों का पार्थक्य मानना न्यायसंगत ही है।

पाश्चात्य दृष्टिकोण से काव्य एक ललित कला है और उसका अन्य ललित कलाओं से व्यापक एवं गहन सम्बन्ध है जबकि भारतीय विचारक काव्य को कला नहीं स्वीकार करते थे।

भारतीय काव्यशास्त्र के अध्येताओं में अलंकारवादी आचार्यों ने काव्य में सौन्दर्योत्पादन के सारे उपकरणों को अलंकार माना है–**सौन्दर्यमलङ्कारः'** अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह का कहना है कि जिस प्रकार कोई नारी कितनी भी सौन्दर्ययुक्त क्यों न हो, यदि अलंकार विहीन है तो शोभा सम्पन्न नहीं कही जा सकती। इसी प्रकार काव्य में चाहें कितने ही गुण क्यों न हो, यदि उसमें अलंकारों की योजना नहीं है तो वह आल्हाद्कारी नहीं हो सकता–**'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्'** आचार्य दण्डी ने अलंकारों को शोभा का कारण बताते हुए कहा है कि–**काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।** जयदेव चन्द्रालोककार जयदेव पियूषवर्ष के अनुसार यदि कोई काव्य को अलंकार रहित मानता है तो अपने को पंडित मानने वाला व्यक्ति अग्नि को उष्णताहीन क्यों नहीं कहता–**'अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती। असो न मन्यते कास्मादनुष्णमनलङ्कृती।** आचार्य वामन ने गुणों को शोभा के कारण और अलंकारों को शोभा को अतिशयता देने वाला या बढ़ाने वाला माना है–**काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः। तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः।** आचार्य विश्वनाथ ने भी अलंकारों को शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म कहा है और

उनको कवच आदि की भाँति शोभा बढ़ाने वाले तथा रस के उपकारक माना है–**शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः। रसादीनुपकुर्वन्तो अलंकारास्ते अंगदादिवत्।**

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि जहाँ भारतीय सौन्दर्यशास्त्रीय तत्त्व में प्रामुख्येन काव्यात्मक तत्व यथा रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, गुण एवं औचित्य, कलातत्व ललित कलाएं–नाट्य, चित्र, संगीत, वास्तु, मूर्तिकला, दर्शनतत्व, कल्पना, बिम्ब, प्रतीक कलागत सौन्दर्य आदि दोनों की गणना होती है। वहीं पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र में भी कल्पना, कला, सौन्दर्य (लौकिक एवं अलौकिक) इन्द्रिय सुख, स्वच्छन्दता, विज्ञान तत्व, औदात्य आदि की गणना होती है। इन्ही परिभाषाओं से यह भी स्पष्ट है कि सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत प्रधानतः तीन प्रकार के सौन्दर्य पर विचार किया जाता है–रूप सौन्दर्य, रंग सौन्दर्य एवं अभिव्यक्ति का सौन्दर्य।

1.3 सौन्दर्य का सामान्य परिचय

भारत में वैदिक काल से लेकर आज तक सौन्दर्य का विवेचन होता आ रहा है। सौन्दर्य के स्वरूप विवेचन के क्रम में इस पर बहुत सारे सवाल उठाए गए हैं, जैसे क्या शरीर का गुण सौन्दर्य है? क्या उसका संबंध चेतना से है? क्या सौन्दर्य आत्मनिष्ठ है या वस्तुनिष्ठ? क्या सौन्दर्य इन दोनों का सामूहित रूप है? सौन्दर्य के सही स्वरूप तक पहुँचने के लिए हमें विद्वानों के विचारों से होकर गुजरना होगा।

वैदिक काल में सौन्दर्य–

भारतीय परम्परा में सौन्दर्य का विशेष विवेचन वैदिक काल से चला आ रहा है। वैदिक सौन्दर्य दृष्टि आध्यात्मिक रही है। इसमें सौन्दर्य की अनुभूति को आनन्द की अनुभूति के रूप में देखा गया है। इस आनन्द का उदय मनुष्य में कब हुआ यह कहना कठिन है। शायद यह मनुष्य को जन्म से प्राप्त है। मानव उस आनन्दमय ब्रह्म का अंश होने के कारण उसमें भी आनन्द का गुण प्राप्त होता है। मनुष्य में इस आनन्द की अनुभूति, सौन्दर्य के अनुभूति का पर्याय है। वेद में सौन्दर्य शब्द के बदले आनंद, मोह आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। वेद के अनुसार 'मानव शरीर में अमृत से आवृत्त ब्रह्मपुरी या ब्रह्म की अपराजित हिरण्यपुरी है। यही हिरण्यपुरी आनंद का स्रोत है। वेदकालीन मनुष्य विश्व जीवन में वनस्पति, पर्वत, सागर, वायु, सूर्य सभी में एक दिव्यता की झलक देखता था। उसके लिए सूर्य केवल आग का गोला नहीं था, वह समस्त संसार का मंगल करने वाला एक दिव्य शक्ति था। इस प्रकार समस्त वस्तु को दिव्य मानकर उसकी पूजा करता था अपने को उस विराट विश्व के पीछे रहने वाला दिव्य सत्ता के सामने समर्पित कर देता था और उसी से उसे आनन्द की अनुभूति होती थी। इसी अनुभूति में ही सौन्दर्य का प्रकटीकरण होता था। वेद कालीन सौन्दर्य अन्तःकरण का सौन्दर्य था, जिसमें आध्यात्मिकता निहित थी।

रामायण में सौन्दर्य का स्वरूप–

समय संसार का एकमात्र सत्य है, जो हमेशा गतिमान है। समय की इस गतिमानता के साथ परिवेश भी बदलता है और परिवेश के साथ–साथ मनुष्य में भी बदलाव आता है और उसके सौन्दर्य चेतना में भी। वैदिक काल के मनुष्य की सौन्दर्य–चेतना और रामायण काल के मनुष्य की सौन्दर्य–चेतना में बहुत अंतर है। वेदकालीन मनुष्य का मन जहाँ प्रकृति के दिव्य और आध्यात्मिक रूपों में रमण करता था, वहाँ रामायण युग

में सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है। लोगों के सामने सत्य–असत्य, नैतिक–अनैतिक आदि कितनी समस्याएँ उत्पन्न हो गई थी। इन समस्याओं से टकराता हुआ वह हार रहा था। इनको एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इनकी समस्याओं का समाधान कर सकता था। उन समस्याओं में सामंजस्य बिठा सकता था। राम का जीवन इन समस्याओं के समाधान का प्रयास था। अतः मानव ने सारी की सारी सौन्दर्य की आभा राम में ही दिखी। यहाँ वेदकालीन दिव्य–सौन्दर्य, मानव शरीर के सौन्दर्य में बदल गया। वैदिक युग की अनुभूति को दिव्य सौन्दर्य कहें तो रामायण काल की अनुभूति को मानव सौन्दर्य कह सकते है। मानव के आंतरिक सौन्दर्य पर ज्यादा बल दिया गया। अतः सौन्दर्य का वर्णन करते हुए रामायणकार ने सौन्दर्य शब्द के बदले रमणीय, शोभन, चारु आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

शोभिताम शतश्चित्राम.....
दर्शनम् चित्रकूटस्य मंदाकिनाश्च शोभने।
अधिक पुरवासाच्च मनये च तवदर्शनात्।।

हे शोभने तुम्हारे साहचर्य के कारण चित्रकूट और मंदाकिनी का दर्शन अयोध्या निवास से अधिक सुखकर प्रतीत होता है।

इसके साथ–साथ रामायण की सौन्दर्य चेतना में शोक का भी स्थान है। राम शोक में डूबे रहकर हर विसंगति का विरोध करते हैं। राम की करुणा और शोक उदात्त होने के कारण वह आनंद की अनुभूति उत्पन्न करती है। करुणा में भी सौन्दर्य की आभा फूटती है। आनन्द की अनुभूति में राम का उदात्त शोक उसका तत्त्व है और सौन्दर्य में करुणा को उचित स्थान देना रामायण का महत्व है।

महाभारत में सौन्दर्य स्वरूप–

महाभारत का सौन्दर्य कर्म और संघर्ष का सौन्दर्य है, जिसमें शांत रस की एक अपूर्व धारा प्रवाहित रही है। महाभारत काल में भोग की अनंत लालसा, ऐश्वर्य का मद एक और कौरवों में है तो दूसरी ओर पांडवों के पास नीति, धर्म का मर्यादा का बंधन है। कौरव के पास भूख की लालसा, ऐश्वर्य का मद इसलिए था कि उन्हे संसार की विराटता का ज्ञान न था, जो ज्ञान अर्जुन को प्राप्त था। संसार का रहस्य और अनंतता का ज्ञान होने के बाद व्यक्तिगत सुख–दुःख, माया–मोह, जय–पराजय आदि सब तुच्छ लगता है। जीवन में विराट दृष्टि से मोह दूर हो जाता है, आँखे उज्ज्वल और तेज युक्त, गति में वीरता और हृदय में एक अद्‌भुत प्रसाद का आविर्भाव होता है। व्यास ने इस गंभीर अनुभव को शांति कहा है। इस शांतता के अनुभव के बाद वह वैरागी बन जाता है, फिर वह संघर्ष करता रहता है, कर्म करता रहता है और फल की आशा नहीं रखता। कृष्ण ने गीता में कहा है–**'कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषुकदाचन।'** यहाँ वैरागी होने का मतलब संसार को छोड़कर पर्वत शिखर एवं वनों में रहना नहीं है। सांसारिक जीवन में रहकर संघर्ष करते हुए वैरागी होना और शांति का अनुभव करना है, जिसमें से सौन्दर्य की एक अद्‌भुत आभा फूटती है।

भक्ति साहित्य में सौन्दर्य–

भक्ति साहित्य का सौन्दर्य प्रपत्ति, शरणागति, आत्मसमर्पण का सौन्दर्य है। वेद में

परोक्ष सत्ता के जो दिव्य सौन्दर्य का वर्णन किया गया था वह अगोचर था। पर भक्ति काल में इस सत्ता को प्रत्यक्ष रूप दे दिया गया और उसमें सारा का सारा दिव्य सौन्दर्य देखा गया।

बोध प्रश्न–1

क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइयें।

i) वेद में सौन्दर्य शब्द के बदले किन शब्दों का प्रयोग किया गया है। (आनन्द, मोह/ईर्ष्या, जलन)

ii) महाभारत का सौन्दर्य कैसा सौन्दर्य है? (कर्म और संघर्ष का सौन्दर्य/धर्म और भक्ति का सौन्दर्य)

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) भक्ति साहित्य का सौन्दर्य.....है (शरणागत/अभिमान)

ii) भक्ति काल में .....सौन्दर्य देखा गया है। (दिव्य/अदिव्य)

बोध प्रश्न–2

क. रामायण काल में सौन्दर्य के सामान्य स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ख. महाभारत काल में सौन्दर्य के सामान्य स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

सौन्दर्य शब्द के परिभाषा एवं स्वरूप पर विस्तृत विचार कीजिए।

1.4 सारांश

सौन्दर्य के सन्दर्भ में चाहे भारत के विद्वान् हो या पाश्चात्य के विद्वान् सभी ने भाषा की थोड़ी सी हेर–फेर से इसको शुद्ध चित्त, दिव्य चित्त या आत्म चैतन्य में देखा है, जो परमात्मा स्वरूप है। सभी ने बाह्य या रूपगत सौन्दर्य से ज्यादा आत्मगत सौन्दर्य को श्रेष्ठ माना है। जब मनुष्य अपना चित्त परमात्मा से जोड़ता है तब उसे सौन्दर्य की अनुभूति होती है और फिर वह चिर आनन्द के सागर में गोते लगाता रहता है। इस इकाई में पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि एवं भारतीय विद्वानों की दृष्टि में सौन्दर्य की

परिभाषा तथा सौन्दर्य के सामान्य विचार हेतु वैदिक काल से लेकर रामायण महाभारत तथा आधुनिक काल तक के सभी विचारकों के मत को प्रकट किया गया है।

1.5 शब्दावली

रमणीयता – शोभा

अलंकार – सौन्दर्य

चारुता – शोभा

क्षणे–क्षणे – प्रत्येक पल

सौन्दर्य – अलंकार

लालसा – लालच

भोग – सुख

1.6 कुछ उपयोगी पुस्तके

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र व्याख्या. व्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहर चन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973
- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुकनाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2007

- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वरनाथ मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979
- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद्, काशी वि. सं. 2007
- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,
- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

ENGLISH REFERENCE

1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored aspects of the Rasa Theory,** vidyanidhi Prakashan, ed.1906
2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**., Firma KLM PVT Ltd.Calcutta,1976.
3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta;** Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1968
4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**,MLBD,Delhi,f.ed. 1961
5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928
6) V.Raghvan, **The Number of Rasas,** University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940
7) V.Raghvan,**Some Concepts of Alankar Shastra**, Adyar Library, Adyar, 1942

1.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

क) (i) आनन्द, मोह (ii) कर्म और संघर्ष का सौन्दर्य

ख) (i) शरणागत (ii) दिव्य

बोध प्रश्न–2

क) रामायण में सौन्दर्य का स्वरूप– समय संसार का एकमात्र सत्य है, जो हमेशा गतिमान है। समय की इस गतिमानता के साथ परिवेश भी बदलता है और परिवेश के साथ–साथ मनुष्य में भी बदलाव आता है और उसके सौन्दर्य चेतना में

भी। वैदिक काल के मनुष्य की सौन्दर्य–चेतना और रामायण काल के मनुष्य की सौन्दर्य–चेतना में बहुत अंतर है। वेदकालीन मनुष्य का मन जहाँ प्रकृति के दिव्य और आध्यात्मिक रूपों में रमण करता था, वहाँ रामायण युग में सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है। लोगों के सामने सत्य–असत्य, नैतिक–अनैतिक आदि कितनी समस्याएँ उत्पन्न हो गई थी। इन समस्याओं से टकराता हुआ वह हार रहा था। इनको एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इनकी समस्याओं का समाधान कर सकता था। उन समस्याओं में सामंजस्य बिठा सकता था। राम का जीवन इन समस्याओं के समाधान का प्रयास था। अतः मानव ने सारी की सारी सौन्दर्य की आभा राम में ही दिखी। यहाँ वेदकालीन दिव्य–सौन्दर्य, मानव शरीर के सौन्दर्य में बदल गया। वैदिक युग की अनुभूति को दिव्य सौन्दर्य कहें तो रामायण काल की अनुभूति को मानव सौन्दर्य कह सकते है। मानव के आंतरिक सौन्दर्य पर ज्यादा बल दिया गया। अतः सौन्दर्य का वर्णन करते हुए रामायणकार ने सौन्दर्य शब्द के बदले रमणीय, शोभन, चारु आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

शोभिताम शतश्चित्राम.....
दर्शनम् चित्रकूटस्य मंदाकिनाश्च शोभने।
अधिक पुरवासाच्च मनये च तवदर्शनात्।।

हे शोभने तुम्हारे सहचर्य के कारण चित्रकूट और मंदाकिनी का दर्शन अयोध्या निवास से अधिक सुखकर प्रतीत होता है।

इसके साथ–साथ रामायण की सौन्दर्य चेतना में शोक का भी स्थान है। राम शोक में डूबे रहकर हर विसंगति का विरोध करते हैं। राम की करुणा और शोक उदात्त होने के कारण वह आनंद की अनुभूति उत्पन्न करती है। करुणा में भी सौन्दर्य की आभा फूटती है। आनन्द की अनुभूति में राम का उदात्त शोक उसका तत्त्व है और सौन्दर्य में करुणा को उचित स्थान देना रामायण का महत्व है।

ख) महाभारत में सौन्दर्य का स्वरूप–महाभारत का सौन्दर्य कर्म और संघर्ष का सौन्दर्य है, जिसमें शांत रस की एक अपूर्व धारा प्रवाहित रही है। महाभारत काल में भोग की अनंत लालसा, ऐश्वर्य का मद एक और कौरवों में है तो दूसरी ओर पांडवों के पास नीति, धर्म का मर्यादा का बंधन है। कौरव के पास भूख की लालसा, ऐश्वर्य का मद इसलिए था कि उन्हे संसार की विराटता का ज्ञान न था, जो ज्ञान अर्जुन को प्राप्त था। संसार का रहस्य और अनंतता का ज्ञान होने के बाद व्यक्तिगत सुख–दुख, माया–मोह, जय–पराजय आदि सब तुच्छ लगता है। जीवन में विराट दृष्टि से मोह दूर हो जाता है, आँखे उज्ज्वल और तेज युक्त, गति में वीरता और हृदय में एक अद्‌भुत प्रसाद का आविर्भाव होता है। व्यास ने इस गंभीर अनुभव को शांति कहा है। इस शांतता के अनुभव के बाद वह वैरागी बन जाता है, फिर वह संघर्ष करता रहता है, कर्म करता रहता है और फल की आशा नहीं रखता। कृष्ण ने गीता में कहा है–**'कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषुकदाचन।'** यहाँ वैरागी होने का मतलब संसार को छोड़कर पर्वत शिखर एवं वनों में रहना नहीं है। सांसारिक जीवन में रहकर संघर्ष करते हुए वैरागी होना और शांति का अनुभव करना है, जिसमें से सौन्दर्य की एक अद्‌भुत आभा फूटती है।

अभ्यास प्रश्न–

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 सौन्दर्य के भाग–वय, रूप, वचन, हाव आदि

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 सौन्दर्य के भाग

- 2.2.1 वय
- 2.2.2 रूप
- 2.2.3 वचन
- 2.2.4 हाव

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- सौन्दर्य के भाग वय के बारें में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य के भाग रूप के बारें में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य के भाग वचन के बारें में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य के भाग हाव के बारें में जान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

सौन्दर्य के विषयगत रूप अनेक है फिर भी उसको सीमाओं में बाँधा जा सकता है। वर्तमान समय के सौन्दर्यशास्त्री इसके भागों के सन्दर्भ में कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हो पाते है। कोई उसे प्रकृति के परिवर्तनों में उपलब्ध बताता है तो दूसरों प्राणी के अभिव्यक्तियों में उसकी खोज करते है। कोई व्यक्ति सुन्दरता को निरन्तर परिवर्तनशील मानता है तो दूसरा परिवर्तनशीलता में ही सौन्दर्य की संभावना करता है। इसीलिए महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् में कहा है कि **'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतयाः** अर्थात् जो वस्तु प्रतिक्षण नवीन लगे वही सुन्दरता का रूप है। इसको लेकर नवीनता को ही सुन्दरता का घटक तत्त्व कहने की भी प्रथा है।

प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थ चरक संहिता के वाजीकरण प्रकरण में बताया है कि प्रत्येक युवक के मन में अपने जीवन साथी का एक बिम्ब वय, रूप वचन एवं हाव के रूप में निहित होता है जिसका साम्य पाने पर ही वह व्यक्ति किसी की ओर आकर्षित होता है। इस इकाई में सौन्दर्य के भाग वय, रूप, वचन एवं हाव का विवेचन किया जाएगा।

2.2 सौन्दर्य के भाग

चरकसंहिता में निरूपित वय, रूप, वचन एवं हाव नामक चारों तत्त्व ही वस्तुतः सौन्दर्य के घटक तत्त्व है जो किसी भी सुन्दर वस्तु में स्वरूपतः विद्यमान रहते है। चरकमुनि की यह उक्ति इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के पहले सौन्दर्य–विषयक सिद्धांत का विवेचन विषयनिष्ठ भी होता था। इसके आधार पर सौन्दर्य विषयक व्यापक सिद्धांत की कल्पना की जा सकती है। सौन्दर्य के स्वरूपाधायक उक्त चारों तत्व ही निखिल ललितकलाओं के आधारभूत तत्व प्रतीत होते है, जिनपर विविध कलाओं का शास्त्र खड़ा किया जा सकता है। हम किसी भी ललित कला को क्यों न ले वह इन चारों से युक्त किसी अन्य तत्व पर आधारित हो नहीं सकती तथा कलाओं के आधारभूत तत्व इन चार में ही समाहित हो सकते है। यद्यपि ये चारों ही तत्व जिस किसी भी रूप में प्रत्येक कला में विद्यमान अवश्य रहते है पर विशेष रूप से इनमें से कोई एक ही कला विशेष का प्रमुख घटक तत्व बनता है। इस दृष्टि से वय–नृत्यकला का, रूप–चित्रकला का, वचन–संगीत कला का तथा हाव–मूर्तिकला का सर्वस्व होने से प्रमुख तत्व है। पर साहित्यकला का चूडान्त उत्कर्ष नाट्य है, ये चारों तत्व उसमें समवेत रूप से विद्यमान होते है। सम्भवतः इसीलिए कविकुलगुरु ने मालविकाग्निमित्रम् में कहा है–**'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।'** अर्थात् लोगों की रुचियाँ परस्पर भिन्न होती है इसीलिए रसिकजन अपनी रुचि के अनुसार भिन्न–भिन्न कलाओं को आश्रयण करते है परन्तु नाट्य यह कला है जिस एक ही से नाना प्रकार की रुचियों से समन्वित सहृदयों का समाहार हो जाता है।

2.2.1 वय

वय अवस्था को कहते है जिसका सम्बन्ध काल से होता है। वैदिक ऋषियों ने ऊषःकाल को एक युवती के रूप में निरूपित किया है जिसका अनुगमन करता हुआ सूर्य उसका प्रणयी माना गया है। प्रत्येक वस्तु एवं व्यक्ति के जीवन में एक काल ऐसा आता है जब उसमें निहित सभी शक्तियाँ उद्भूत होने लगती है और उसके अंग–प्रत्यंग पूर्णता को प्राप्त होकर खिल उठते है तथा उस वस्तु या व्यक्ति में सुषमा बिखेरने लगते हैं, जिसे सौन्दर्य कहा जाता है। इस प्रकार वय वस्तु या व्यक्ति के आभ्यन्तर बाह्य स्वरूप के चूडान्त उत्कर्ष की अवस्था की संज्ञा है। जिससे यौवन परिलक्षित होता है। यो तो यौवन की अभिव्यक्ति सभी कलाओं का विषय है किन्तु नृत्यकला का तो यह सर्वस्व ही है। नृत्यांगना स्वयं युवती होती है तथा अपनी नृत्यकला के द्वारा प्रणय, राग, संभोग, विप्रलम्भ, अर्चना आदि जिन भावों की वह अभिव्यक्ति अपने नृत्यकला के माध्यम से करती है वे सभी यौवन के ही होते है। किन्तु मात्र यौवन की अभिव्यक्ति से नृत्यकला पूर्णता को नहीं प्राप्त कर पाती। वह कला का रूप तभी धारण करती है जब उसमें रूप, वचन एवं हाव की अभिव्यंजना नृत्य से ही होने लगे और सहृदय प्रेक्षक को ऐसा लगे कि मन्द–मन्द मुस्कान, मधुर गुंजन एवं विविध आंगिक भंगिमाओं से सवंलित किशोर एवं किशोरी राधाकृष्ण की नृत्य कर रहे हैं। तभी सही नृत्यकला पूर्णता को प्राप्त करती है और अर्थो में कला कहलाती है। नृत्यकला के अतिरिक्त चित्र मूर्ति एवं साहित्य में यौवन के अतिरिक्त वय के अन्य अंगों को भी निरूपित किया गया है जैसे पैंजनी पहने हुए शिशु राम का ठुमक–ठुमक चलने का वर्णन तुलसीदास ने अत्यन्त मनोहारी किया है तो बाणभट्ट के द्वारा किया हुआ जाबालि ऋषि की वृद्धावस्था का वर्णन कम हृदयग्राही नहीं है।

नायिका–भेद का विवेचन करने वाले आचार्य नायिकाओं के मुग्धा–मध्या प्रगल्भा आदि भेदों का निरूपण वय के अनुसार ही करते हैं तथा वय सन्धि को लांघने को ही कवि लोग यौवन में प्रवेश मानते हैं इसलिए वय पद के यौवन का बोधक होने में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए।

2.2.2 रूप

यद्यपि रूप को सौन्दर्य का पर्याय मानकर उसकी कई प्रकार की परिभाषाएँ की गई है जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। पर यहाँ रूप से अभिप्राय अंग–प्रत्यंग की बनावट से है जिसे आकृति एवं अवयव संस्थान कहते है क्योंकि चाक्षुष प्रत्यक्ष उसी का होता है। किसी भी वस्तु की एक विशेष प्रकार की बनावट होती है चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म अथवा सजीव हो या निर्जीव। आज के सन्दर्भ में कैमरा जिसको अपने में उतार ले वही रूप है। इसमें आकार के साथ–साथ रंग का भी योग होता है और जिसके हल्के और गहरे प्रयोग से चित्रकार रूप के द्वारा भावों की अभिव्यंजना करते है। मनुष्य में रूप से आकृति की बनावट अर्थात् कट का ग्रहण होता है। शकुन्तला को पहली बार देखकर दुष्यन्त कह उठता है–**'मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः'** अर्थात् अंगों की यह दिव्य बनावट मनुष्यों में कहाँ से आ गयी। उसका अनुमान सही निकला क्योंकि वह मेनका अप्सरा की सन्तान थी जिसकी आकृति का प्रभाव शकुन्तला पर था। यही नहीं उर्वशी के रूप को देखकर राजा पुरुरवा अभिभूत हो जाता है और सोचने लगता है कि इसे निश्चित रूप से वृद्ध प्रजापति ने तो नहीं बनाया है। क्योंकि एक तो निरन्तर वेद का पारायण करते रहने से यह ब्रह्मा जड़ हो गया है। इसमें नवनवोन्मेषशालिता कहाँ से आ सकती है। दूसरे अतिवृद्ध हो जाने के कारण रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि भोग्य विषयों के प्रति उसमें आकर्षण भी कहाँ से आ सकता है। ऐसा लगता है कि निरन्तर सृष्टि करते–करते थक जाने के कारण किसी दिन ब्रह्मा ने अवकाश ग्रहण कर लिया था और अपना कार्यभार चन्द्रमा को सौंप दिया था जिसने इसके रूप को बनाया और उसमें अपनी कान्ति भी डाल दी। अथवा ब्रह्मा के हाथ से जब व्यक्तियों की आकृतियाँ बिगड़ने लगी तो कामदेव को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने स्वयं आकर आग्रह किया–'पितामह आप रहने दीजिए मैं आपकी मदद कर देता हूँ और उसने अपनी श्रृंगारमयी भावनाओं के अनुरूप इसकी रचना कर दी। अथवा उर्वशी के रूप का निर्माण तो वस्तुतः वसन्त ऋतु के अधिष्ठाता देवता के द्वारा हुआ होगा जिसके आते ही सूखी टहनियाँ भी लहरा उठती है और सर्वत्र सुषमा व्याप्त हो जाती है–

अथवा नेषं तपस्विनः सृष्टिरित्यवैमि –
अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः,
श्रृंगारेकरसः स्वंय नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथन्नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो,
निर्मातुं प्रभवेन् मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।।

इसीलिए शकुन्तला के निर्माण में ब्रह्मा सावधान दिखते है। उन्होंने तब तक की बनाए हुए चन्द्रज्योत्स्ना, चकोर आदि अनेक सौन्दर्याधायक तत्वों से समुचित सामग्री अपने मन में एकत्र कर और बिना हाथ लगाये (साक्षात् मन से) ही इसकी रचना कर दी है। क्योंकि ब्रह्मा के रचना कौशल एवं इसके अंग सौष्ठव को देखते हुए यही कहना होता है कि ऐसी कोई दूसरी नायिका हुई ही नहीं–

चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्वयोगा,
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे,
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।

महाकवि बाणभट्ट ने बिना हाथ लगाये साक्षात् मन से ही कालिदास की रूप निर्माण की कल्पना के रहस्य का उद्घाटन कादम्बरी में चाण्डाल कन्या के रूप के वर्णन के प्रसंग में किया हैं। निश्चित रूप से प्रजापति ने इसे बिना हाथ से छुए केवल मन से ही बनाया है। अन्यथा हाथ के स्पर्श से लावण्य में कोई न कोई कमी अवश्य आ जाती और अवयवों में सुश्लिष्टता नहीं रह पाती–**मन्ये अस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहि करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः।**

यह रूप ही सौन्दर्य का घटक दूसरा तत्व है, जो सामान्य रूप से तो सभी कलाओं में विद्यमान रहता है किन्तु इसका प्रमुख क्षेत्र चित्रकला है। रूप की विविधता एवं नवनवोन्मेषशालिता ही चित्रकार की प्रतिभा के द्योतक है। पर इसमें भी सौन्दर्य के अन्य घटक तत्व वय, वचन एवं हाव की अभिव्यंजना परमावश्यक है। वय रूप की चरम परिणति से तथा हाव उसकी भंगिमाओं से अभिव्यंजित होते है। परन्तु चित्रकला की पूर्णता तभी मानी जाती है जब वह स्वयं मानो बोलने लगे। कलाविदों में अग्रणी कालिदास ने रूप में ही रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द नामक अन्य भोग्य तत्वों का भी समावेश कर उसका भव्य निरूपण किया है। वह कहते है कि शकुन्तला का यह रूप अनघ है। आप पाप को कहते है जो अपने रूप के प्रति गर्व की भावना से उत्पन्न होता है। ऐसा तभी होता है जब उसके रूप की अभिशंसा हो। शकुन्तला का रूप अनध इसलिए है कि अभी तक किसी ने उसके रूप को निहार कर उसकी अभिशंसा नहीं की है। फलतः उसे अपने रूप की उत्कृष्टता का भान भी नहीं है। अपने रूपातिशय का भान ही अब अर्थात् अनर्थ का कारण होता है क्योंकि उससे रूपवान् व्यक्ति के मन में आकांक्षा उत्पन्न होती है कि लोग उस पर '**लुब्ध**' हो। शकुन्तला का रूप उस पुष्प के समान है जिसका आधान अभी भौरों ने भी नहीं किया है। वह तो उस किसलय के समान है जिसे उसके वृक्ष से तोड़कर हस्तगत कर लेने की इच्छा अभी किसी को नहीं हुई हैं। वह शाणोल्लीढ़ उस मणि के समान है जिसे भेदकर पहनने के लिए किसी ने अभी मणि का छेदन–कार्य नहीं किया है तथा उस शहद के समान है जिसे मधुमक्खियों ने भी अभी चखा नहीं है। इसका उपभोग करने का सौभाग्य पता नहीं विधाता किसको प्रदान करेगा? किन्तु इतना तो निश्चित ही हैं कि इसका यह निःकलुष रूप जिसे भी मिलेगा वह उसके जन्मजन्मान्तर के संचित निखिलपुण्य का एकमात्र फल होगा–

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै–
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

2.2.3 वचन

वचन अथवा बोली स्वतन्त्र रूप से भी सौन्दर्य की आधायिका होती है। कालिदास प्रभृति कवियों ने जंगल में कटे हुए बांस के छेद में हवा भरने से उत्पन्न होने वाला

ध्वनि में भी संगति का सा माधुर्य वर्णित किया हैं। वसन्त ऋतु में प्रफुल्लित आम्रमंजरियों की मादक गन्ध से आप्लावित हो कोयल जब कूंजती है तो उसकी बोली किसके मन को हरण नहीं कर लेती। सौन्दर्य के आधान में बोली के महत्व को हम तब आंकते है जब किसी सर्वांगसुन्दर के प्रति आकृष्ट हो उस ओर उन्मुख होते हैं और फटे बांस जैसी उसकी आवाज सुनकर उससे विमुख हो जाते है। लय, स्वर और मूर्छनाओं में बंधकर यही वचः संगीत की सृष्टि करता है जिसे ललितकलाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसका अपना शास्त्र है जो साहित्य की ही तरह अत्यन्त विशद एवं परम महनीय है। किन्तु वचः जब वय, रूप और हाव के योग से ऐसा समां बांधता है कि वाक् से ही विविध भंगिमा लिए पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त रूप की झांकी प्रस्तुत हो जाये, तभी वह संगीत कला के स्तर तक पहुँच पाता है। इसे ही भरतमुनि वाङ्मयी सिद्धि कहते है। वचः का सिद्धांत अत्यन्त व्यापक है। इस विषय के अनुसन्धान ने अनेक शास्त्रों को जन्म दिया है जिनमें व्याकरण और संगीत प्रमुख है। दोनों ही वाक् की जिन चार अवस्थाओं का निरूपण करते हैं वे हैं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। किन्तु दोनों की विवेचन प्रणाली सर्वथा विपरीत होती है, व्याकरण परा से आरम्भ होकर पश्यन्ती के अनन्तर उत्पद्यमान मन्द स्वर रूप नाद के ही व्यक्ति के ध्वनियंत्र के द्वारा मुख के विविध स्थलों से टकराकर बिखर जाने से उत्पन्न वैखरी अवस्था में परिणत उच्चार्यमाण वर्णों से निष्पन्न पद तथा उनके भी समूहात्मक वाक्य के विविध रूपों एवं तद्विषयक सिद्धांन्तों का ही विवेचन प्रस्तुत करता है। वैयाकरण मुनि पाणिनि का विधान है–

आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।
प्रातः सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम्।।
सोदीर्णो मूध्नर्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पंचधा स्मृतः।।
स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तं निबोधत।।

इसके विपरीत संगीतशास्त्र का समारम्भ वाक् की अन्तिम अवस्था वैखरी से ही होता है। किन्तु उसका लक्ष्य नाद अर्थात् मध्यमा से होता हुआ आहतनाद अर्थात् पश्यन्ती को भी लाघँकर अनाहत नाद परावस्था तक पहुँचता हैं। यह स्पष्ट है कि व्याकरण का व्यापक क्षेत्र वैखरी वाक् की विशाल परिणति है। महाभाष्यकार पतंजलि का कहना है कि बृहस्पति के गुरु और इन्द्र के अध्येता होने पर भी दिव्य वर्ष सहस्र तक निरन्तर अध्ययन–अध्यापन के अनन्तर भी वाक् की विशालता का अन्त नहीं पाया जा सका। श्रुति भी कहती है–**'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे।'** भरतमुनि का संकेत सर्वथा समुचित है कि निखिल शास्त्र वाङ्मय ही है क्योंकि वे वाक् में ही सन्निविष्ट है–**''वाङ्मयानि हि शास्त्राणि वाङ्निष्ठानि तथैव च।''** जहाँ तक संगीत का संबंध है उसके विषय में छान्दोग्य उपनिषद् की स्पष्ट उक्ति है कि शब्द के विवर्त रूप वेद के निखिल मन्त्रों का समाहार ऊँ नामक प्रणव में हो जाता है जो अक्षर होने के साथ–साथ उद्गीथ भी है–**''ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत''** उद्गीथ का अर्थ उसकी गेयात्मकता ही है जिसके रहस्य का उद्घाटन करते हुए वही अर्थात् छान्दोग्य उपनिषद् में बताया गया है कि निखिल भूतों का रस पृथ्वी है, पृथ्वी का रस जल है, जल का रस औषधियाँ है तथा औषधियों का रस ही पुरुष होता है। इस पुरुष का भी

रस वाक् तथा वाक् का ऋक् एवं ऋक् का भी रस साम होता है इसीलिए श्रीमदभगवदगीता में भगवान् कृष्ण स्वयं को सामवेद कहते है–**वेदानां सामवेदोऽस्मि।** उस साम का भी रस अर्थात् सारतत्त्व ही उद्गीथ है। वह सभी रसों में रसतम तथा वरार्ध्य अर्थात् महनीय रस है–**'एषां भूतानां पृथ्वी रसः, पृथिव्या आपो रसः अपां औषधयो रसः, ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसः, वाचो ऋग्रसः ऋचः साम रसः, साम्न उद्गीथो रसः, स एव रसानां रसतमः वरार्ध्यो अष्टमो य उद्गीथः।' (छान्दोग्य उपनिषद् 1/1/2)**

वाक् का वही प्रकार और रूप कलात्मक होता है जो सहृदय श्रोता की हृदय को झंकृत करता हुआ उसकी अन्तरात्मा चैतन्य तक को उन्मीलित कर देता है। सौन्दर्यानुभूति के अध्यात्मवादी व्याख्याताओं ने इसीलिए उसे स्वात्मपरामर्श कहा है। वचः का दर्शन अतिगहन एवं परमहस्यमय है जिसका यथार्थ बोध योगी लोग ही कर पाते है। साहित्यकार इसे ही आत्मा की कला मानकर उसकी उपासना करते हैं–**'वन्देमहि च तां वाचममृत्तामात्मनः कलाम्।' (उत्तररामचरित 1/1)** अमृत पद से आचार्य भवभूति का अभिप्राय यहाँ मरणधर्मरहित अनश्वर मात्र नहीं है अपितु आत्मा की ही अंशभूत वह वाक् अमृत के समान आस्वादनीय निखिल पदार्थों से भी अत्यधिक विलक्षणतया आस्वाद्य है। अतएव वह वन्दनीय अर्थात् निखिल आस्वाद्यः पदार्थों में अभिनन्दनीय है, अतएव समुपासनीय है। आचार्य दण्डी उसका साक्षात्कार एक ज्योति के रूप में करते हैं। जिसके बिना यह निखिल जगत अन्धतिमिराच्छन्न ही बना रहता–

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाहवयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।

2.2.4 हाव

भाव ही जब शब्दों से अभिहित न होकर व्यक्ति के वचनादान विहरण आदि क्रियाओ से व्यक्त होने लगते है तो उन्हें हाव कहते है। हावयतीति हावः की व्युत्पत्ति से ह् धातु से घञ् प्रत्यय होकर भाव पद व्युत्पन्न होता है जिसका शाब्दिक अर्थ है जो मानो बुला रहा है अर्थात् सहृदय के मन को अपनी ओर हठात् आकृष्ट कर रहा है। हावों की इस मनोहारिता को कलात्मक रूप देने के लिए कलाकार इनको मूर्ति के रूप में अभिव्यक्त करता है। इसे ही मूर्तिकला कहते है जो होती तो हाव रूप है किन्तु वय, रूप एवं वचन तीनों को अपने में समेट कर ही सहृदय के मन रूपी सरोवर को आन्दोलित करती हैं। मूर्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह युवावस्था को ही प्रकट करे जो वयोजन्य सौन्दर्य का चरम बिन्दु होता है। अपितु हाव में सन्निहित वय की भावानुरूपता ही यहाँ अपेक्षित होती है। मूर्ति में रूप तो निहित होता ही है, जो हाव के अनुरूप होकर उसमें लयात्मकता की सृष्टि करता है तभी उसमें वचः का भी योग हो जाता है और ऐसा लगता है कि यह मूर्ति हमसे कुछ कह रही है। मूर्ति में हाव के साथ–साथ वय, रूप और वचः का भी समुन्मेष कराते हुए सौन्दर्य की सृष्टि का माध्यम बनती है। हावों की अभिव्यक्ति का माध्यम यद्यपि दृश्य तथा श्रव्य उभयविध काव्य भी होता है तथापि साहित्य में भाषा के प्रयोग से हाव की अभिव्यक्ति मूर्ति की अपेक्षा शिथिल रूप में होती हैं इसीलिए हाव साहित्य में जहाँ अंग से रूप में समाहित होता है वहाँ मूर्तिकला का अंगीभूत तत्व हाव ही होता है। उर्दू की शायरी का बहुत बड़ा अंश मात्र हाव की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिसे वहाँ अदा के नाम से अभिहित किया जाता है। समुद्र देशों की मूर्तिकला भी चित्रकला के समान ही युवावस्था अर्थात् शृंगारव्यंजक हावों की अभिव्यक्ति बड़ी विविधता के साथ करती है।

दशरूपककार ने हाव भाव और हेला को स्त्रियों में यौवन के आगमन से होने वाले शारीरिक अलंकार माना है जो सत्वभाव की बहुलता से उत्पन्न होते है–

यौवने सत्वजाः स्त्रीणांलकारास्तु विशंतिः।
भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः।।

(दशरूपक, 2/30)

किन्तु उनका यह निरूपण मात्र श्रृंगार वह भी युवती नायिका को लक्षित कर हुआ है। हाव बहुत व्यापक वस्तु है जिसे मात्र श्रृंगार में नहीं बांधा जा सकता। अपितु वह सभी रसों एवं भावों की आंगिक अभिव्यक्ति को प्रकट करता हुआ मूर्तिकला का मुख्य आधार बनता है। शब्द के द्वारा अभिव्यक्ति होकर भाव उतना प्रभावशाली नहीं हो पाता जितना वह आंगिक चेष्टाओं से अभिव्यक्त होकर हो जाता हैं। आचार्य आनन्दवर्धन का कहना है कि कोई भी भाव व्यंग्य होकर जिस चारुता की अनुभूति कराता है, वाच्य होने पर नहीं करा पाता क्योंकि उनकी धारणा है कि अलंकारपरक रचना करने में कुशल महाकवियों की अभिव्यक्तियों में प्रतीयमान का संस्पर्श ही उनमें शोभा का मुख्यतया आधान करता है–

मुख्या महाकविगिरामलंकृतिभूतामपि।
प्रतीयमानच्छायैव भूषा लज्जेव योषिताम्।।

हाव से होने वाली जो व्यंजना है वह प्रेक्षक के मन पर प्रभावातिशय का आधान करती है। यही कारण है कि हाव में स्वतंत्र रूप से एक कला के मुख्य आधायक तत्त्व होने की योग्यता है। हाव की भूमिका चित्र और नृत्य कलाओं में भी कम महत्त्व की नहीं होती। विशेष रूप से नृत्यकला में आंगिक चेष्टाओं की एक परम्परा ही सृष्ट हो जाती है। किन्तु भावाभिव्यक्ति के द्वारा रसनिष्पत्ति के लिए हाव भले ही अधिक उपयोगी हो पर प्रभाव की दृष्टि से वह मूर्ति की अपेक्षा नृत्य अनतिशायी ही होता है तथा मूर्तिकला की अपेक्षा उसका क्षेत्र भी संकुचित ही होता है। चित्रकला में रूप ही विशेष रूप से हावी होता है।

बोध प्रश्न–1

क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइयें।

i) सौन्दर्य के भाग कितने है। (चार/तीन)

ii) वय किसे कहते है। (अवस्था/बोली)

iii) अवस्था का सम्बन्ध किससे होता है। (काल/भेद)

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) रूप का अभिप्राय ..... है। (अंग–प्रत्यंग के बनावट से/शरीर से)

ii) वच शब्द से अभिप्राय ..... है। (वाणी से/मानव से)

iii) भाव जब क्रियाओं से व्यक्त होता है तब..... कहलाता है। (हाव/वय)

बोध प्रश्न–2

1. हाव को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. वय को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

सौन्दर्य के प्रकार पर विस्तृत विचार कीजिए।

2.3 सारांश

साहित्य भी कला है जिसमें अन्य प्रायः सभी ललित कलाओं का समावेश हो जाता है। साहित्य अन्य कलाओं से विलक्षण भी है क्योंकि कलाओं के चारों आधायक तत्त्व वय, रूप, वचः एवं हाव का समावेश सरलता से हो जाता है इसलिये सौन्दर्य अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में साहित्य सर्वातिशायी माना गया है। जिसमें वय अर्थात् एक विशेष अवस्था अर्थात् युवावस्था, रूप अर्थात आकृति की बनावट कहते है, वचः से अभिप्राय बोली से है तथा हाव आंगिक भावाभिव्यक्तियों को कहते है जो देखने–बोलने, उठने–बैठने तथा हसने आदि में परिलक्षित होते है। इस इकाई में इन चारों का सौन्दर्य के सन्दर्भ में विवेचन किया गया है।

2.4 शब्दावली

वय – अवस्था

रूप – आकृति की बनावट

भाव – आंगिक

2.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र, व्याख्याकार व्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973

- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुकनाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 2007
- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वर नाथ मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979
- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद् काशी वि. सं. 2007
- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,
- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

ENGLISH REFERENCE

1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored aspects of the Rasa Theory,**vidyanidhi Prakashan, ed.1906

2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**.,Firma KLM PVT Ltd.Calcutta,1976.

3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta;** chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1968

4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**,MLBD,Delhi,f.ed. 1961

5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928

6) V.Raghvan, **The Number of Rasas,** University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940

7) V.Raghvan,**Some Concepts of Alankar Shastras**, Adyar Library, Adyar, 1942

2.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

क) (i) चार (ii) अवस्था (iii) काल

ख) (i) अंग–प्रत्यंग के बनावट से (ii) वाणी से (iii) हाव

बोध प्रश्न–2

क) भाव ही जब शब्दों से अभिहित न होकर व्यक्ति के वचनादान विहरण आदि क्रियाओ से व्यक्त होने लगते है तो उन्हें हाव कहते है। हावयतीति हावः की व्युत्पत्ति से ह् धातु से घञ् प्रत्यय होकर भाव पद व्युत्पन्न होता है जिसका शाब्दिक अर्थ है जो मानो बुला रहा है अर्थात् सहृदय के मन को अपनी ओर हठात् आकृष्ट कर रहा है। हावों की इस मनोहारिता को कलात्मक रूप देने के लिए कलाकार इनको मूर्ति के रूप में अभिव्यक्त करता है। इसे ही मूर्तिकला कहते है जो होती तो हाव रूप है किन्तु वय, रूप एवं वचन तीनों को अपने में समेट कर ही सहृदय के मन रूपी सरोवर को आन्दोलित कर पाती। मूर्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह युवावस्था को ही प्रगट करे जो वयोजन्य सौन्दर्य का चरम बिन्दु होता है। अपितु हाव में सन्निहित वय की भावानुरूपता ही यहाँ अपेक्षित होती है। मूर्ति में रूप तो निहित होता ही है जो हाव के अनुरूप होकर उसमें लयात्मकता की सृष्टि करता है तभी उसमें वचः का भी योग हो आता है और ऐसा लगता है कि यह मूर्ति हमसे कुछ कह रही है। मूर्ति में हाव के साथ–साथ वयो रूप और वचः का भी समुन्मेष कराते हुए सौन्दर्य की सृष्टि का माध्यम बनती है। हावों की अभिव्यक्ति का माध्यम यद्यपि दृश्य तथा श्रव्य उभयविध काव्य भी होता है तथापि साहित्य में भाषा के प्रयोग से हाव की अभिव्यक्ति मूर्ति की अपेक्षा शिथिल रूप में होती हैं। इसीलिए हाव साहित्य में जहाँ अंग से रूप में समाहित होता है वहाँ मूर्तिकला का अंगीभूत तत्व हाव ही होता है। उर्दू की शायरी का बहुत बड़ा अंश मात्र हाव की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिसे वहाँ अदा के नाम से अभिहित किया जाता है। समुद्र देशों की मूर्तिकला भी चित्रकला के समान ही युवावस्था अर्थात् श्रृंगारव्यंजक हावों की अभिव्यक्ति बड़ी विविधता के साथ करती है।

ख) वय अवस्था को कहते है जिसका सम्बन्ध काल से होता है। वैदिक ऋषियों ने ऊषःकाल को एक युवती नारी को एक युवती नारी के रूप में निरूपित किया है जिसका अनुगमन करता हुआ सूर्य उसका प्रणयी माना गया है। प्रत्येक वस्तु एवं

व्यक्ति के जीवन में एक काल ऐसा आता है जब उसमें निहित तमाम शक्तियाँ उद्‌भूत होने लगती है और उसके अंग–प्रत्यंग पूर्णता को प्राप्त होकर खिल उठते है तथा उस वस्तु या व्यक्ति में सुषमा बिखेरने लगते हैं जिसे सौन्दर्य कहा जाता है। इस प्रकार वय वस्तु या व्यक्ति के आभ्यन्तर बाह्य स्वरूप के चूडान्त उत्कर्ष की अवस्था की संज्ञा है। जिससे यौवन परिलक्षित होता है। यो तो यौवन की अभिव्यक्ति सभी कलाओं का विषय है किन्तु नृत्यकला का तो यह सर्वस्व ही है। नृत्यांगना स्वयं युवती होती है तथा अपनी नृत्यकला के द्वारा प्रणय, राग, संभोग, विप्रलम्भ, अर्चना आदि जिन भावों की वह अभिव्यक्ति अपने नृत्यकला के माध्यम से करती है वे सभी यौवन के ही होते है। किन्तु मात्र यौवन की अभिव्यक्ति से नृत्यकला पूर्णता को नहीं प्राप्त कर पाती। वह कला का रूप तभी धारण करती है जब उसमें रूप, वचन एवं हाव की अभिव्यंजना नृत्य से ही होने लगे और सहृदय प्रेक्षक को ऐसा लगे कि मन्द–मन्द मुस्कान, मधुर गुंजन एवं विविध आंगिक भंगिमाओं से संवलित किशोर एवं किशोरी राधाकृष्ण की नृत्य कर रहे हैं। तभी सही नृत्यकला पूर्णता को प्राप्त करती है और अर्थो में कला कहलाती है। नृत्यकला के अतिरिक्त चित्र मूर्ति एवं साहित्य में यौवन के अतिरिक्त वय के अन्य अंगों को भी निरूपित किया गया है जैसे पैजनी पहने हुए शिशु राम का ठुमक–ठुमक चलने का वर्णन तुलसीदास ने बड़ा मनोहारी किया है तो बाणभट्‌ट के द्वारा किया हुआ जाबालि ऋषि की वृद्धावस्था का वर्णन कम हृदयग्राही नहीं है। नायिका–भेद का विवेचन करने वाले आचार्य नायिकाओं के मुग्धा–मध्या प्रगल्भा आदि भेदों का निरूपण वय के अनुसार ही करते हैं तथा वयः सन्धि को लांघने को ही कवि लोग यौवन में प्रवेश मानते हैं। इसलिए वयः पद के यौवन का बोधक होने में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न–

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 3 सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची पर विचार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची

- 3.2.1 रमणीयता
- 3.2.2 शुचिता
- 3.2.3 लावण्य
- 3.2.4 चारुता
- 3.2.5 सौन्दर्य
- 3.2.6 शोभा
- 3.2.7 कान्ति
- 3.2.8 सुषमा
- 3.2.9 श्री
- 3.2.10 रूप
- 3.2.11 सौकुमार्य
- 3.2.12 सौभाग्य
- 3.2.13 विच्छिन्ति
- 3.2.14 कला
- 3.2.15 मुग्धता
- 3.2.16 मनोहारिता
- 3.2.17 अभिरामिता
- 3.2.18 मधुरता

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- सौन्दर्य शब्द के बारें में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची रमणीयता, शुचिता एवं लावण्य के बारें में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची चारुता, सौन्दर्य एवं शोभा के बारें में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची कान्ति, सुषमा एवं श्री के बारें में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाचीरूप, सौकुमार्य एवं सौभाग्य के बारें में जान सकेंगे।

- सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची विच्छिन्ति, कला एवं मुग्धता के बारें में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची मनोहारिता, अभिरामिता एवं मधुरता के बारें में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली से परिचित हो सकेगें।

3.1 प्रस्तावना

सौन्दर्य का अर्थ 'सुन्दर' शब्द सु उपसर्ग पूर्वक उन्द् धातु में अरन् प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न होता है। उन्द् धातु भिण्येने या तर करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। मानव–मन को अपनी आभा या शोभा से भीतर तक भिगो देने वाली वस्तु, व्यक्ति या क्रिया सुन्दर कहलाती है। सुन्दर से भाववाचक संज्ञा बनती सुन्दरता अथवा सौन्दर्य है। 'सौन्दर्य' शब्द का एक और प्रकार से निर्वाचन किया जा सकता है–सुन्दं राति इति सुन्दरम तस्य भाव सौन्दर्य अर्थात सुन्द को जो लाता है वह सुन्दर और उसका भाव जहाँ हो तो वह सौन्दर्य कहलाता है। इसके पर्यायवाची पद प्रायः एक ही भाव के भिन्न–भिन्न पक्षों का ही निरूपण करते है जो विविध व्यक्तियों द्वारा उनकी अनुभूति के अनुरूप व्यक्त किये गये होते है। सौन्दर्य पद से चित्ताह्लादक जिस भाव की प्रतीति होती है, उसको व्यक्त करने के लिए कवियों, आचार्यों एवं कलाविदों ने अनेक पदों का प्रयोग किया है। जो सौन्दर्य के विविध पक्षों को उद्घाटित करते है। इस इकाई में सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची रमणीयता, शुचिता, लावण्य, चारुता, सौन्दर्य, शोभा, कान्ति, सुषमा श्री, रूप, सौकुमार्य सौभाग्य, विच्छिन्ति, कला मुग्धता, मनोहारिता, अभिरामिता एवं मधुरता का वर्णन किया जायेगा।

3.2 सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची

आचार्य ब्रजमोहन चतुर्वेदी ने अपने पुस्तक सौन्दर्य कारिका में सौन्दर्य के पर्यावाचियों की संख्या 18 बताई है जो इस प्रकार है–

रमणीयता य शुचिता लावण्यं चारुता च सौन्दर्यम्।
शोभा कान्तिः सुषमा श्रीश्च रूपं च सौकुमार्यम्।।
सौभाग्यं विच्छिन्तिः कला च मुग्धतोऽथ मनोहारिता।
अभिरामता मधुरता दश चाष्टौ सौन्दर्यपर्यायाः।।

(सौन्दर्यकारिका 3/5)

अर्थात् सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची रमणीयता, शुचिता, लावण्य, चारुता, सौन्दर्य, शोभा, कान्ति, सुषमा श्री, रूप, सौकुमार्य सौभाग्य, विच्छिन्ति, कला मुग्धता, मनोहारिता, अभिरामिता एवं मधुरता है।

3.2.1 रमणीयता

रमणीयता की परिभाषा करते हुए महाकवि हर्ष ने लिखा है कि–'**क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।' (नैषधीयचरितम्)** अर्थात् जो प्रत्येक क्षण में नयेपन की प्रतीति होती है, जो मन को अपने में उलझाए रखती है, उसे रमणीयता कहते है। रमणीयता शब्द रमुक्रीडायां धातु से अनीयर् प्रत्यय मिलकर बनता है जिसमें रमणीय का भाव ही रमणीयता है। यह सौन्दर्य का वह पक्ष जो हमारे मन को अपने में रमा ले। महाकवि भवभूति ने अपने नाटक उत्तररामचरितम में राम के व्यक्तित्व का इस

प्रकार चित्रण करते है कि वे अपने अरण्यकाल में सर्व सामान्य के लिए सर्वदा सुलभ थे। कोई भी व्यक्ति उनसे कभी भी मिल सकता था और आस–पास रहने वाले व्यक्ति तो प्रतिदिन अनेक बार उनके पास आ जाते थे पर वही राम प्रत्येक बार कुछ नये ही नये प्रतीत होते थे–

सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव सः।

3.2.2 शुचिता

इशुचिर् पूतिभावे धातु से कृदन्त इन् प्रत्यय करके शुचि पद व्युत्पन्न होता है जो पूति अर्थात् पवित्रता के अर्थ में रहता है, उसी का भाव शुचिता है। शुचिता दो प्रकार की होती है–1. स्वच्छता 2. पवित्रता। शुचिता शारीरिक धर्म है तो पवित्रता मानसिक वृत्ति है। शुचिता उभय संवलित होती है जो वस्तु की शुद्धता में भी निहीत होती है। यह मन का उज्जवल धर्म कहलाती है, क्योंकि यह प्रमाता के मन में रजस, तमस भाव को दबा कर विशुद्ध सत्त्व गुण की अनुभूति कराती है–

रजस्तोभ्यामस्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते।

अर्थात् जो विषय अपनी बाह्य स्वच्छता तथा आभ्यन्तरिक पवित्रता के द्वारा अनुभव करने वाले के मन में सत्व गुण का उद्रेक करा दे उसे ही शुचि कहेंगे जिसका भाव ही शुचिता है। इसकी परिणति प्रसन्नता में होती है।

3.2.3 लावण्य

रूपगोस्वामी ने लावण्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि–

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते।।

उज्जवल नीलमणि 11/26

अर्थात् जिस प्रकार मुक्ताफल में भीतर से झलक निकलती है, वैसे ही अंगों के भीतर से तरलता की जो प्रतीत होती है वही लावण्य है। आचार्य अभिनवगुप्त ने लावण्य पद की व्याख्या करते हुए ध्वन्यालोक लोचन में कहा है कि–**लावण्यं हि नामावयवसंस्थ्ज्ञानाभिव्यंग्यमवयवव्यतिरिक्तं धर्मान्तरमेव। न चावयवानामेव निर्दोषता वा भूषणयोगी वा लावण्यम्। (ध्वन्यालोकलोचन कारिका 1/4)** अर्थात् लावण्य अवयव संस्थानों से अभिव्यंजित होने वाला अवयवों से व्यतिरिक्त उनका एक भिन्न धर्म होता है। अवयवों की निर्दोषता या अलंकारता लावण्य नहीं है अपितु वह उनसे व्यतिरिक्त ही एक विलक्षण वस्तु है।

3.2.4 चारुता

चारुता पद का प्रयोग संस्कृत साहित्यशास्त्र के ग्रन्थों में बहुत अधिक उपलब्ध होता है। आचार्य भामह ने कहा है कि–**'न नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम्'** अर्थात् कहने का आशय यह है कि किसी भी वस्तु या व्यक्ति विशेष के अर्थ में नितान्त आदि पदों का प्रयोग करने से अभिव्यक्ति में चारुता उत्पन्न होती है। इसका अभिप्राय यह है कि वह वाच्य नहीं अपितु व्यंग्य तत्व है अतः व्यक्ति या वस्तु के वे गुण जो उसके क्रियाकलापों से अभिव्यंजित होते है अर्थात् चारुता की सृष्टि करते है। कवि कुलगुरु कालिदास ने **'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।'** कहकर स्पष्ट किया

कि वह किसी को आकृष्ट करें अर्थात् किसी के किसी गुण पर रीझना ही सौभाग्य है। क्योंकि कालिदास ने शकुन्तला को **'भाग्येष्वनुत्सेकिनी'** होने का निर्देश दिया है जिसका अभिप्राय यह है कि यदि तुम्हारा प्रियतम तुम्हें बहुत माने तो उस पर तुम्हारें मन में उत्सेक अर्थात् घमण्ड नहीं होना चाहिए जो प्रायः हो ही जाता है।

3.2.5 सौन्दर्य

आचार्य रूपगोस्वामी ने उज्जवल नीलमणि में सौन्दर्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि–

'अंङ्गप्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशो यथोचितम्।
सुश्लिष्टसन्धिबन्धः स्यातत्सौन्दर्यमुदीर्यते।।

अर्थात् अंग–प्रत्यंगों का यथोचित सन्निवेश तथा अंगों के जोड़ों का सुश्लिष्ट होना ही सौन्दर्य कहलाता है।

3.2.6 शोभा

शोभा शब्द शुभ् धातु से करण अर्थ में घञ् प्रत्यय होकर शोभन्ते अनया इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न होता है। शोभा पद प्रायः रूपात्मक सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त हेाता है जो प्राकृतिक वस्तुओं में अधिक देखा जाता है। आचार्य वामन काव्यालंकार सूत्र में शोभा के बारें में कहा है कि–**'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः।** अर्थात् गुणों को ही शोभा का स्वरूपाधायक तथा अलंकारों को उसका उत्कर्षाधायक तत्व माना है।

3.2.7 कान्ति

कान्ति शब्द कमु कान्तौ धातु से स्त्री विवक्षा में क्तिन् प्रत्यय होकर कान्ति पद व्युत्पन्न होता है। भट्टोजित दीक्षित ने धात्वर्थ कान्ति का अर्थ इच्छा करते हुए कहा है कि–**कान्तिरिहेच्छा** अर्थात् कान्ता पद का अर्थ इच्छिता तथा अभिलाषिता प्रेयसी हेाता है। इस प्रकार कान्ति वस्तु का वह स्वभाव है जो प्रेक्षक में उसे पाने की अभिलाषा को जन्म देता है।

3.2.8 सुषमा

यह भी एक वस्तु धर्म ही है जो उसके बाह्य अंगों की परस्पर अनुरूपता में निहीत होती है। सुन्दर नासा कपोल से युक्त मुख मण्डल में यदि आँखे अनुपात में छोटी होती हो तो यह सुषमा न होकर कुसुमा हो जायेगी। इस प्रकार अवयव संस्थानों की परस्पर अनुरूपता ही सुषमा की जननी है । यह एक ही व्यक्ति के अंग–प्रत्यंग अथवा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की अनुरूपता में भी निहित होती है। कालिदास के रघुवंश में सुषमा का वर्णन करते हुए कहा है कि–

सेचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागतात्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः।।

3.2.9 श्री

श्री का अभिप्राय सहज सौन्दर्य से है न कि आरोपित सौन्दर्य से है। श्री शब्द की व्युत्पत्ति श्री धातु से क्विप् प्रत्यय होकर दीर्घ निपातन के द्वारा व्युत्पन्न श्री पद लक्ष्मी के समान ही वस्तु या व्यक्ति के उसी सहज धर्म को कहते है जो उसका आश्रयण

जन्म से ही करता है। लक्ष्मी को विष्णु का आश्रयण करने के कारण ही श्री की संज्ञा मिली है। इसी को बताते हुए महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरितम् में कहा है कि–

'प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणेरेव वर्धितः।।

अर्थात् सीता राम को प्रकृति से ही प्रिय है। उनका यह प्रियभाव समय–समय पर सीता के सहज गुणों की अभिव्यक्ति से और अधिक बढ़ जाता है।

3.2.10 रूप

भक्तिवादी आचार्य रूपगोस्वामी ने भक्ति रस के प्रसंग में अपने ग्रन्थ उज्जवल नीलमणि में कहा है कि–

अङ्गाम्यभूषितान्येव केनचिद् भूषणादिना।
येन भूषितवद् भान्ति तद्रूपमिति कथ्यते।।

अर्थात् रूप उसे कहते है जिसके होने के बिना किसी आभूषण के पहने बिना भी व्यक्ति ऐसा शोभायमान हो कि मानो उसने विविध आभूषण धारण कर रखे हो। राजानक रुय्यक ने सहृदय लीला में रूप के गुणों के बारें में कहा है कि जो शोभाधायक धर्म के रूप में गृहीत होते है उसे रूप कहते है। रूप के बारें में वे स्पष्ट रूप से कहते है–**अवयवानां रेखास्पाष्ट्यं रूपम्** अर्थात् अवयवों का ऐसा विन्यास कि उसे मात्र रेखा से दर्शाया जा सके रूप कहलाता है।

3.2.11 सौकुमार्य

सौकुमार्य में व्यक्ति का सौम्य भाव परिलक्षित हेाता है। जिस प्रकार उग्रता का प्रतीति का आधायक रुक्षता होती है उसी प्रकार सुकुमारता के द्वारा वस्तु या व्यक्ति के मृदु भाव को ही प्रकट किया जाता है। जैसे धूप में कुम्हला जाना, शीत में सफेद हो उठना आदि। भवभूति ने परित्यक्ता सीता के वर्णन में सौकुमार्य का निरूपण बड़े मार्मिक ढंग से किया है–

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोतकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरणी विरहव्यथेव वनमेति जानकीः।।

3.2.12 सौभाग्य

ललित ऐश्वर्य से युक्त को सुभग की संज्ञा दी गई है जिसका भाव ही सौभाग्य है। किन्तु सौन्दर्य के पर्याय के रूप में सौभाग्य पद वाचक होने की अपेक्षा व्यंजक ही अधिक है जो इस बात का द्योतक है कि कोई व्यक्ति किसी को बहुत मानता है इसी अर्थ में कालिदास ने **'प्रियेषु सौभाग्यफलां हि चारुता'** का प्रयोग किया है।

3.2.13 विच्छिन्ति

विच्छिन्ति पद वि पूर्वक छिद् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है जो सौन्दर्य के उस पक्ष का निरूपण करता है जिससे उसके अवबोध से इन्द्रियों का उनके विषयों से संबंध विच्छिन्न हो जाना है। यह बाह्य नहीं अपितु आन्तरिक धर्म है। रूपगोस्वामी इसकी परिभाषा करते हुए कहते है–**'आकल्पकल्पनापि विच्छितिः कान्तिपोषकृत्।'** विच्छिन्ति वह तत्त्व है जिसकी लेशमात्र प्रस्तुति से ही व्यक्ति में कान्ति का परिपोष हो

उठता है।

3.2.14 कला

कला अपने आप में एक ऐसा पद है जो सौन्दर्य का आधयक होते हुए सौन्दर्य का बोध भी करवाता है। कल संविभतो धातु से कृदन्त अच् प्रत्यय और टाप् होकर व्युत्पाद्यमान यह पद पूर्ण के किसी अंश का वाचक है। पूर्ण ब्रह्मा की आंशिक रूप से बोध कराने वाली विधाओं को भी उसी आधार पर कला कहा जाता है। यह सौन्दर्य की आध्यात्मिक व्याख्या के अवसर पर बताााया जायेगा किन्तु सौन्दर्य या लालित्य के बोध का जहाँ तक प्रश्न है, उसकी इस पद के द्वारा अभिव्यंजना ही माननी होगी।

3.2.15 मुग्धता

व्यक्ति का भोलापन ही वस्तुतः मुग्धता है जिससे उसके मन के निश्छल और निष्कपट भाव की व्यजंना होती है इसीलिए साधुजनों को किसी का भोलापन भी बहुत भाता है। भवभूति ने इसकी अभिव्यक्ति साधुजनों के जीवन में वर्णित की है तो अत्यन्त ही हद्य है। वे कहते है कि साधु व्यक्ति का व्यवहार अनायास प्यार से भरा होता है। उसकी वाणी पर एक संयम होता है जो उस व्यक्ति के विनय भाव से बहुत ही मधुर लगता है। उसकी बुद्धि स्वभावतः ही कल्याणकारिणी होती है तथा जिसका परिचय अनीति होता है क्योंकि उसके विषय में बताते हुए उसकी अच्छाई के साथ किन्तु परन्तु लगाकर कुछ कहने लायक बात नहीं होती।

3.2.16 मनोहारिता

सौन्दर्य के विविध पक्ष हमरी इन्द्रियों के विषय होते है और उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करते है। उनके द्वारा ही वे व्यक्ति पर अपना प्रभाव प्रकट करते है। किन्तु कुछ ऐसे भाव है जिनका ग्रहण साक्षात् मन से ही होने लगता है। क्योंकि इन्द्रियाँ शिथिल होने के कारण उनके ग्रहण में समर्थ नहीं हो पाती। उन्हीं को मनोहर कहते हैं जिनका भाव मनोहारिता है। यह सौन्दर्य के उस पक्ष का निरुपक है जिसमें हृदय संवाद होता है। इसलिए वस्तुतः मनोहारिता रूप नहीं अपितु उन भावों में होती है जो प्रमाता व्यक्ति के प्राणवायु में स्पन्दन उत्पन्न करने में सक्षम होते है।

3.2.17 अभिरामिता

जो आभ्यन्तर एवं बाह्य उभयविध सौन्दर्य से संवंलित हो, उसमें अभिरामता रहती है। श्रीरामचन्द्र को लोकाभिराम इसीलिए कहा गया है कि वे देखने में सर्वाङ्गसुन्दर तो थे ही, उनके मन, बुद्धि, अहंकार भी परम सुन्दर थे। अतएव उन्होंने सभी साधुजनों की विपदाओं को दूर करने का और व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार सम्पन्न बनाने का बीड़ा उठाया था।

आपदामहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।।

3.2.18 मधुरता

श्री रूपगोस्वामी ने भगवान श्रीकृष्ण के अंग–प्रत्यंग में माधुर्य का निरूपण बड़ी निपुणता के साथ किया है। माधुर्य की परिभाषा करते हुए वे कहते है कि अंगों में निहित रूप ऐसा विलक्षण हो कि जिसका निर्वचन न हो सके उसे ही माधुर्य कहते

है–**'रूपं किमप्यनिर्वाच्यं तनोर्माधुर्यमुच्यते।'**

आनन्दवर्धन ने मधुर पद का अर्थ परमह्लादन किया है। श्रृंगार इसलिए मधुर रस है क्योंकि वह मधु के समान आबालवृद्ध सबका प्रह्लादन करता है–**'श्रृगार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः।'**

माधुर्य गुणों में अन्यतम है तो चित्त की परिणति की एक अवस्था है। कलात्मक अभिव्यक्तियों के अवबोध से सहृदय सामाजिक के मन की तीन दशायें होती है–द्रुति, दीप्ति और विकास। चित्त का अंग–प्रत्यंग में व्याप्त हो जाना ही उसका विकास है जिसकी अनुभूति प्रसाद गुण में होती है। ओजोगुण चित्त को जहाँ उद्दीप्त करता है वहाँ माधुर्य से चित्त द्रुति होती है। अतः माधुर्य या मधुरता सौन्दर्य का वह पक्ष है जिससे सहृदय हृदय झटिति द्रवित हो जाता है।

बोध प्रश्न–1

क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइयें।

i) रमणीयता का क्या है। (असुन्दरता/मनोहारिता)

ii) चारुता शब्द का प्रयोग किस कवि ने किया है। (कालिदास/भास)

iii) सौन्दर्य का पर्यायवाची नहीं है। (चारुता/निन्द)

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) विच्छन्ति पद वि उपसर्ग पूर्वक छिद् धातु से .....प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है (क्तिन् प्रत्यय/तल् प्रत्यय)

ii) प्रियेषु सौभाग्य फलां चारुता .....का प्रयोग किया है। (कालिदास/भास)

बोध प्रश्न–2

क) सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची रमणीयता, शुचिता एवं लावण्य को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची चारुता, सौन्दर्य एवं शोभा को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची पर विस्तृत विचार कीजिए।

3.3 सारांश

इकाई–3 में सौन्दर्य शब्द के पर्यायवाची रमणीयता, शुचिता, लावण्य, चारुता, सौन्दर्य, शोभा, कान्ति, सुषमा श्री, रूप, सौकुमार्य सौभाग्य, विच्छिन्ति, कला मुग्धता, मनोहारिता, अभिरामिता एवं मधुरता का वर्णन किया गया। जिसमें रमणीयता का अर्थ रमणीय का भाव है, शुचिता का अर्थ पवित्रता है, लावण्य का अर्थ तरलता है, चारुता का अर्थ सुन्दरता है, सौन्दर्य का अर्थ अंगों–प्रत्यंगों का यथोचित सन्निवेश है, कान्ति का अर्थ इच्छा है, सुषमा का अर्थ सुन्दरता है, श्री का अर्थ सहज सौन्दर्य है, रूप का अर्थ सौन्दर्य है, सौकुमार्य का अर्थ सौन्दर्य का आधायक इत्यादि पदों को स्पष्ट किया गया है।

3.4 शब्दावली

रमणीयता – सुन्दरता
शुचिता – पवित्रता
लावण्य – तरलता
चारुता – सुन्दरता
सौन्दर्य – शोभा
शोभा – सुन्दर
कान्ति – चमक

3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र व्याख्याकार व्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973
- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998

- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुकनाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय, चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 2007
- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वर नाथ मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979
- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद् काशी वि. सं. 2007
- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,
- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

ENGLISH REFERENCE

1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored aspects of the Rasa Theory,**vidyanidhi Prakashan, ed.1906
2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**.,Firma KLM PVT Ltd.Calcutta,1976.
3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta;** Chowkhamba Sanskrit Series, varanasi, 1968
4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**,MLBD,Delhi,f.ed. 1961
5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928
6) V.Raghvan, **The Number of Rasas,** University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940
7) V.Raghvan,**Some Concepts of Alankar Shastra**, Adyar Library, Adyar, 1942

3.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

क) (i) मनोहारिता (ii) कालिदास (iii) चारुता

ख) (i) क्तिन् प्रत्यय (ii) कालिदास

बोध प्रश्न–2

क) रमणीयता–रमणीयता की परिभाषा करते हुए महाकवि हर्ष ने लिखा है कि–**'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।' (नैषधीयचरितम्)** अर्थात् जो प्रत्येक क्षण में नयेपन की प्रतीति होती है, जो मन को अपने में उलझाए रखती है, उसे रमणीयता कहते है। रमणीयता शब्द रमुक्रीडायां धातु से अनीयर् प्रत्यय मिलकर बनता है जिसमें रमणीय का भाव ही रमणीयता है। यह सौन्दर्य का वह पक्ष जो हमारे मन को अपने में रमा ले। महाकवि भवभूति ने अपने नाटक उत्तररामचरितम में राम के व्यक्तित्व का इस प्रकार चित्रण करते है कि वे अपने अरण्यकाल में सर्वसामान्य के लिए सर्वदा सुलभ थे। कोई भी व्यक्ति उनसे कभी भी मिल सकता था और आस–पास रहने वाले व्यक्ति तो प्रतिदिन अनेक बार उनके पास आ जाते थे पर वही राम प्रत्येक बार कुछ नये ही नये प्रतीत होते थे–

सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव सः।

शुचिता–इशुचिर् पूतिभावे धातु से कृदन्त इन् प्रत्यय करके शुचि पद व्युत्पन्न होता है जो पूति अर्थात् पवित्रता के अर्थ में रहता है, उसी का भाव शुचिता है। शुचिता दो प्रकार की होती है–1. स्वच्छता 2. पवित्रता। शुचिता शारीरिक धर्म है तो पवित्रता मानसिक वृत्ति है। शुचिता उभय संवलित होती है जो वस्तु की शुद्धता में भी निहीत होती है। यह मन का उज्जवल धर्म कहलाती है, क्योंकि यह प्रमाता के मन में रजस, तमस भाव को दबा कर विशुद्ध सत्त्व गुण की अनुभूति कराती है–

रजस्तोभ्यामस्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते।

अर्थात् जो विषय अपनी बाह्य स्वच्छता तथा आभ्यन्तरिक पवित्रता के द्वारा अनुभव करने वाले के मन में सत्व गुण का उद्रेक करा दे उसे ही शुचि कहेंगे जिसका भाव ही शुचिता है। इसकी परिणति प्रसन्नता में होती है।

लावण्य–रूपगोस्वामी ने लावण्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि–

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते।।

उज्जवल नीलमणि 11/26

अर्थात् जिस प्रकार मुक्ताफल में भीतर से झलक निकलती है, वैसे ही अंगों के भीतर से तरलता की जो प्रतीत होती है वही लावण्य है। आचार्य अभिनव गुप्त ने लावण्य पद की व्याख्या करते हुए ध्वन्यालोक लोचन में कहा है कि–**लावण्यं हि नामावयवसंस्थज्ञानाभिव्यंग्यमवयवव्यतिरिक्तं धर्मान्तरमेव। न चावयवानामेव**

निर्दोषता वा भूषणयोगी वा लावण्यम्। (ध्वन्यालोकलोचन कारिका 1/4) अर्थात् लावण्य अवयव संस्थानों से अभिव्यंजित होने वाला अवयवों से व्यतिरिक्त उनका एक भिन्न धर्म होता है। अवयवों की निर्दोषता या अलंकारता लावण्य नहीं है अपितु वह उनसे व्यतिरिक्त ही एक विलक्षण वस्तु है।

ख) **चारुता**—चारुता पद का प्रयोग संस्कृत साहित्यशास्त्र के ग्रन्थों में बहुत अधिक उपलब्ध होता है। आचार्य भामह ने कहा है कि—**'न नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम्'** अर्थात् कहने का आशय यह है कि किसी भी वस्तु या व्यक्ति विशेष के अर्थ में नितान्त आदि पदों का प्रयोग करने से अभिव्यक्ति में चारुता उत्पन्न होती है। इसका अभिप्राय यह है कि वह वाच्य नहीं अपितु व्यंग्य तत्व है अतः व्यक्ति या वस्तु के वे गुण जो उसके क्रियाकलापों से अभिव्यंजित होते है अर्थात् चारुता की सृष्टि करते है। कवि कुलगुरु कालिदास ने **'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।'** कहकर स्पष्ट किया कि वह किसी को आकृष्ट करें अर्थात् किसी के किसी गुण पर रीझना ही सौभाग्य है क्योंकि कालिदास ने शकुन्तला को **'भाग्येष्वनुत्सेकिनी'** होने का निर्देश दिया है जिसका अभिप्राय यह है कि यदि तुम्हारा प्रियतम तुम्हें बहुत माने तो उस पर तुम्हारें मन में उत्सेक अर्थात् घमण्ड नहीं होना चाहिए जो प्रायः हो ही जाता है।

सौन्दर्य—आचार्य रूपगोस्वामी ने उज्जवल नीलमणि में सौन्दर्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि—

'अंङ्गप्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशो यथोचितम्।
सुश्लिष्टसन्धिबन्धः स्यातत्सौन्दर्यमुदीर्यते।।

अर्थात् अंग—प्रत्यंगों का यथोचित सन्निवेश तथा अंगों के जोड़ों का सुश्लिष्ट होना ही सौन्दर्य कहलाता है।

शोभा—शोभा शब्द शुभ् धातु से करण अर्थ में घञ् प्रत्यय होकर शोभन्ते अनया इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न होता है। शोभा पद प्रायः रूपात्मक सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त हेाता है जो प्राकृतिक वस्तुओं में अधिक देखा जाता है। आचार्य वामन काव्यालंकार सूत्र में शोभा के बारें में कहा है कि—**'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः** अर्थात् गुणों को ही शोभा का स्वरूपाधायक तथा अलंकारों को उसका उत्कर्षाधायक तत्व माना है।

अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई 4 भारतीय सौन्दर्य दर्शन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय और पाश्चात्य अवधारणा

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :

- भारतीय सौन्दर्यदर्शन के बारे में जान सकेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय अवधारणा को जान सकेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्र के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों की अवधारणा को जान सकेंगे।
- भारतीयसौन्दर्य दर्शन से सम्बन्धित विस्तृत दृष्टिकोण का विकास होगा ।
- भारतीय सौन्दर्य दर्शन को अपने शब्दों में व्यक्त करने में कुशलता प्राप्त करेंगे।

4.1 प्रस्तावना

सौंदर्यशास्त्र (अंग्रेज़ी–Aesthetic), सौन्दर्य–मीमांसा, रसमीमांसा, या सौन्दर्य का सिद्धान्त, दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जो सुंदरता, कला और रसात्मक अनुभव के स्वभाव के अध्ययन तथा उनकी सैद्धांतिक समीक्षा से संपृक्त है। सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है, जिसमें कलात्मक कृतियों, रचनाओं आदि से अभिव्यक्त होने वाला अथवा उनमें निहित रहने वाले सौंदर्य का तात्विक और मार्मिक विवेचन होता है। यह सौन्दर्यपरक मूल्यों पर विमर्श है, जो विशेषतः रस की समीक्षा (judgement of taste) से अभिव्यंजित होता है। इसे कला–दर्शनशास्त्र के नाम से भी जानते हैं, हांलाकि कुछ दार्शनिकों का मानना है कि इनमें कुछ भिन्नता हैं।

किसी वस्तु को देखकर हमारे मन में जो आनन्ददायिनी अनुभूति होती है उसके स्वभाव और स्वरूप का विवेचन तथा जीवन की अन्यान्य अनुभूतियों के साथ उसका समन्वय स्थापित करना इनका मुख्य उद्देश्य होता है। कला, संस्कृति और प्रकृति का प्रति अंकन ही सौन्दर्यशास्त्र है। सौन्दर्यशास्त्र की परिधि अनुभवों के प्राकृतिक और कृ त्रिम दोनों स्रोतों को शामिल करती है और यह समीक्षा करता है कि हम उन स्रोतों के बारे में कैसा निर्णय बनाते हैं। सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख प्रश्न हैं, "कला क्या है ?", "कला का काम क्या है?" और "क्या चीज, एक कला को अच्छी कला बनाती है?"

सौन्दर्यशास्त्र का एकमात्र उद्देश्य इन्द्रिय सुख की चेतना है। अलग – अलग विचारकों व दार्शनिको ने इसको भिन्न–भिन्न तरह से परिभाषित किया है। सौन्दर्यशास्त्र मानव

की कला चेतना कला का एक ही एक क्षेत्र है।

आधुनिक चिंतक एवं साहित्यकारों ने सौन्दैर्य के लिए सम्बन्ध को महत्व दिया है। इस सम्बन्ध में प्रयोजन, लाभ, क्षति का कोई हिसाब न होकर केवल आनन्द की अनुभूति रहती है। यह सौन्दर्यानुभूति मनुष्यों के मन को भूख–प्यास, लोभ–मोह आदि भावो से ऊपर उठाकर उस उँचाई तक ले जाती है, जहाँ मनुष्य केवल अखण्ड आनंद का अनुभव करता है। सौन्दर्यशास्त्र का वास्तविक उद्देश्य ऐसी अनुभूति ही है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कहना है कि – "सौन्दर्य ने हमारी प्रवृति को सयंत किया है। जगत के साथ हमारे सम्बन्ध को केवल प्रयोजन का सम्बन्ध न रखकर आनन्द का सम्बन्ध बना दिया है।" आनंद का सम्बन्ध तभी बन पाता है, जब मानव अपने चित्त को एकाग्र कर संसार से सम्बन्ध जोड़ता है। इसके बिना उसको आनन्द मिलता है तब वह आनन्द, आनंद न होकर मद होता है।

अतः अंतःकरण की एकाग्रता एवं पवित्रता से ही सौन्दर्य की उत्पत्ति होती है और उसी से मनुष्य को परमानन्द की प्राप्ति होती है। मनुष्य को ऐसे सच्चे एवं पवित्र आनन्द की प्राप्ति कराना ही सौन्दर्यशास्त्र का उद्देश्य है।

सौन्दर्य मानवमन की एक सहज प्रवृत्ति है अतः सौन्दर्य से सम्बद्ध चिन्तन प्राचीन काल से होता रहा है। पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र नाम से सौन्दर्य एवं कला से सम्बन्धी विवेचन का शास्त्र अठारहवीं शती में प्रादुर्भूत हुआ। भारत में सौन्दर्यशास्त्र नाम से किसी पृथक् शास्त्र का उद्भावन नहीं हुआ बल्कि यहाँ सौन्दर्यतत्त्व–मीमांसा प्राचीनयुग से ही प्रारम्भ हो गयी थी इसलिए भारतीय चिन्तन में सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी किसी भी विषय का अभाव होते हुए भी काव्यशास्त्र के अन्तर्गत सौन्दर्य की विशद विवेचना हुई है।

सौन्दर्यशास्त्र हिन्दी में 'एस्थेटिक्स' का पर्याय बना। कुछ विद्वान इसे अलंकारशास्त्र भी कहते हैं किन्तु सौन्दर्यशास्त्र के सच्चे स्वरूप एवं व्यपदेश को समझने के लिए 'एस्थेटिक्स' शब्द पर विचार करना आवश्यक है। माना गया है कि 'एस्थेटिक्स' शब्द ग्रीक भाषा से प्राप्त किया है, जिसका मूल रूप है– Ato Qntikos यही ग्रीक शब्द बाद में 'AESTHESIS' बनकर उपस्थित हुआ, जिसका अर्थ होता है– ऐन्द्रिय सुख की चेतना । तदन्तर इस 'AESTHETICS' से 'ऐस्थेटिक' शब्द बना । पाश्चात्य साहित्य में पहले 'एस्थेटिक' शब्द ही प्रचलित था 'एस्थेटिक्स' नहीं। बाउमगार्तेन ने भी 'एस्थेटिक' शब्द का प्रयोग किया था। बहुत बाद में इस शब्द का बहुवचन रूप 'एस्थेटिक्स' प्रचलित हुआ।

4.2 सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय और पाश्चात्य अवधारणा

प्रकृति में सर्वत्र सौन्दर्य विद्यमान है। सौन्दर्यशास्त्र संवेदनात्मक, भावनात्मक गुणधर्म और मूल्यों का अध्ययन है। कला, संस्कृति और प्रकृति का प्रति अंकन ही सौन्दर्यशास्त्र है। सौन्दर्यशास्त्र दर्शनशास्त्र का ही एक अंग है। इसे आनन्दमीमांसा भी कहते है।

सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है जिसमे कलात्मक कृतियों, रचनाओं आदि से अभिव्यक्त होने वाले सौन्दर्य का तात्विक, दार्शनिक एवं मार्मिक विवेचन होता है।

किसी भी सुन्दर वस्तु को देखकर हमारे मन में जो आनन्ददायिनी अनुभूति होती है एवं जीवन में होने वाली अन्य अनुभूतियों के साथ उसका समन्वय स्थापित करना ही सौन्दर्यशास्त्र का उद्देश्य है।

सौन्दर्य बोध के महत्त्व को समझने की प्रेरणा जिस भी मनुष्य में आ जाएगी वह व्यक्ति सौन्दर्यबोधी बन जायेगा। सौन्दर्य आचरण पर निर्भर रहता है। केवल बाहय सौन्दर्य पर्याप्त नहीं होता जब तक समाज में व्यक्ति का कार्य एवं व्यवहार भी सुन्दर न हो।

सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें कलात्मक कृतियों रचना आदि से अभिव्यक्त होने वाला अथवा उनमें निहित रहने वाले सौन्दर्य का तात्विक और मार्मिक विवेचन होता है।

सौन्दर्य शास्त्र में सौन्दर्य अनुभव और निर्णय के प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों स्रोत शामिल हैं। जब हम वस्तुओं के सौंदर्य से जुड़ते हैं जैसे देखना, संगीत सुनना ,कविता पढ़ना, नाटक का अनुभव करना आदि।

सौन्दर्य स्वयं सुधा है और हर क्षण परिवर्तित होता रहता है। मनुष्य इस जगत के कण–कण में सौंदर्य की मनोहारी छवि को विस्मत होकर निहारता रहता है। सौंदर्य एक ऐसा दिव्य तत्व है। जो मनुष्य की चेतना को जन्म से ही आकर्षित करने लगता है। सौन्दर्य चिंतन में रुचि भेद के कारण अपना अपना दृष्टिकोण और अपनी –अपनी सोच की विविधता के कारण सौंदर्य की परिभाषा को प्रस्तुत किया जा सकता है।

अतः सौन्दर्य हृदयगत भाव है। पूर्ण सौंदर्य दर्शन के लिए वस्तु और अनुभूति दोनों का सद्भाव सर्वथा आवश्यक है जो कि वस्तु और भाव संयोग में ही पूर्ण होता है किसी एक में सौन्दर्य की अनुभूति करना संपूर्ण अनुभूति नही होकर केवल आंशिक अनुभूति होगी।

सौन्दर्यशास्त्र पर विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किये हैं यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र में सौन्दर्यशास्त्र से सम्बन्धित कोई भी विषय प्राप्त नहीं होता। परन्तु भारतीय विद्वानों की रचनाओं में इसका अवलोकन हमें अवश्य ही प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र अथवा AESTETICS को लेकर पर्याप्त चर्चा आधुनिक युग से बहुत पहले ही शुरू हो गयी थी। अतः सौन्दर्यशास्त्र पर हमें दो अवधारणायें प्राप्त करते है–

1. भारतीय अवधारणा 2. पाश्चात्य अवधारणा

सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय अवधारणा–

भारतीय काव्यशास्त्र में यद्यपि सौन्दर्य–सिद्धान्त नामक किसी विषय की प्रतिष्ठा नहीं हुई अपितु सौन्दर्य के मूल तत्त्वों, विविध पक्षों, अंगों, स्वरूप आदि का अत्यन्त गहन विवेचन प्राचीन काव्यशास्त्र में ही उल्लेख प्राप्त होता है। भारतीय काव्यशास्त्र के प्रणेता वैदिक आचार्यों ने जिन सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की है उनमें रस के भाव पक्ष तथा अनुभूतियोग्य रूप का निर्वचन रस और ध्वनि–सिद्धान्तों के अन्तर्गत तथा समाहित रूप का विवेचन अलंकार एवं रीति–सिद्धान्तों में व्यापक रूप से उल्लेखनीय है। आचार्य कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त तथा क्षेमेन्द्र के औचित्य सिद्धान्त में क्रमशः सौन्दर्य के मूलभूत रूप का तथा नैतिक पक्ष के उद्घाटन के साथ सम्मिलित अनुपात आदि तत्त्वों का सूक्ष्म चिन्तन भी देखा जा सकता है। नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थों में सौन्दर्य के प्रायोगिक स्वरूप के रूप में देखा गया है।

भारतीय काव्यशास्त्र को सौन्दर्यशास्त्र का अग्रदूत कहा जा सकता है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस, ध्वनि, औचित्य, वक्रोक्ति, रीति एवं अलंकार, प्रत्येक सम्प्रदाय का मूल उद्देश्य प्रिया रूपी सौन्दर्य की स्थापना है क्योंकि काव्यशास्त्र का सम्बन्ध मूलतः

काव्य के विभिन्न तत्त्वों एवं पक्षों के निरुपण से है तथा इस शास्त्रीय निरुपण में काव्य के प्रेम रूपी रमणीयार्थक सौन्दर्य के विशद रहस्यात्मक तत्वों का आलम्बन स्वतः प्राप्त हो जाता है ।

'सौन्दर्य' शब्द का काव्य–शास्त्रीय अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग भामह द्वारा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में हुआ। भामह ने सौन्दर्य के स्थान पर चारुता 'शब्द' का आह्लादक प्रयोग किया। एक स्थान पर (काव्यशास्त्र 1/55) उन्होंने सौन्दर्य शब्द का भी उपयोग किया है। आचार्य दण्डी ने वर्णनपद्धति के संदर्भ में सुन्दर शब्द का उपयोग किया। रीति–सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य वामन 'सौन्दर्य' शब्द को स्पष्टतः परिभाषित करने वाले प्रथम आचार्य हैं। उनके मतानुसार काव्य का सारतत्त्व है अलंकार और अलंकार का अर्थ है सौन्दर्य, इस प्रकार सौन्दर्य काव्य का प्राण तत्त्व है–

काव्यं ग्राह्यमलंकारात् ।। सौन्दर्यमलंकारः ।।

अभिनवगुप्त द्वारा काव्य के अनेक संदर्भों में सौन्दर्य' शब्द का प्रयोग किया है। आचार्य कुन्तक ने सौन्दर्य की सत्ता विशिष्ट रूप में प्रतिष्ठित करते हुए उसकी आनन्दात्मकता को व्यञजनात्मक व्यंजित किया है। 'वक्रोक्तिजीवितम' में मुख्यतः चार स्थलों पर आचार्य कुन्तक द्वारा 'सुन्दर' एवं 'सौन्दर्य' शब्दों का प्रयोग हुआ है। उनका मत है–

वर्णविन्यासविच्छित्तिपदसंधानसम्पदा।
स्वल्पया बन्धसौन्दर्यं लावण्यमभिधीयते । ।

वर्णविन्यास की शोभा से युक्त पदों की स्वल्प सम्पत्ति से उत्पन्न रचना का सौन्दर्य लावण्य कहलाता है। वैदिक काव्यशास्त्र में 'सौन्दर्य' शब्द के लिए विभिन्न विद्वानों ने अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें शोभा, चारुता, रमणीयता, विच्छित्ति तथा छाया शब्द अधिक प्रचलित हुए हैं। शोभा शब्द का प्रयोग करते हुए आचार्य दण्डी कहते हैं– '**काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते**' वही वामन कहते हैं– 'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः । इसी प्रकार साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वानाथ ने अलंकार की स्थिति को सूचित करने के लिए 'शोभा' शब्द का आश्रय लिया। भामह के अतिरिक्त आनन्दवर्धनाचार्य ने सौन्दर्य' के पर्याय रूप में 'चारुता' शब्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया।

भारतीय काव्यशास्त्र में रमणीय' शब्द को व्यवहृत करने वाले प्रमुख आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ, आनन्दवर्धन, राजशेखर तथा कुन्तक हैं। इन सभी का मत है कि सुन्दर एवं रमणीय शब्द परस्पर पर्यायवाची होने से दोनों का ही सामान्य धर्म रंजकत्व है । पण्डितराजजगन्नाथानानुसार– '**रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्** ।' इन्होंने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य माना है। आचार्य कुन्तक द्वारा 'सौन्दर्य' शब्द के पर्यायवाची रूप में 'छाया' एवं 'विच्छित्ति' शब्दों को प्रयुक्त किया गया है।

आधुनिक भारतीय चिन्तकों ने 'सौन्दर्य' के विभिन्न पक्षों पर मत प्रकट किया है। आधुनिक चिन्तकों ने अपने–अपने द्वारा सौन्दर्य की उन परतों को उजागर करने का प्रयास किया है जो पूर्ववर्ती आचार्यो द्वारा उद्घाटित नहीं हो सका था। इसके अतिरिक्त इन सौन्दर्य मर्मज्ञ विद्वानों ने सौन्दर्य के स्वरूप का मौलिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से अनुसंधान करके उसके वस्तुनिष्ठ एवं भावनिष्ठ पक्षों पर भी चिन्तन व्यक्त किया है। आधुनिक भारतीय चिन्तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मत है कि 'जो उपयोगिता की किसी भावना के बिना हमें आनन्द प्रदान करती है, उसे सौन्दर्य की भावना कहा

जाता है। सौन्दर्य के साथ आनन्द का घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हुए उन्होंने सौन्दर्य का लक्षण निष्प्रयोजन आनन्द' को स्वीकार किया है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल सौन्दर्य की वस्तुनिष्ठ सत्ता के पक्षधर हैं तो श्री हरिवंश सिंह शास्त्री जी सौन्दर्य की अनुभूति बुद्धि की निष्कामता से जोड़ते हैं।

एक ओर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सौन्दर्य की सत्ता वस्तु में न मानकर व्यक्ति की अपनी रुचि में स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा की दृष्टि में सौन्दर्य वस्तुगत न होकर आत्मगत होता है। सौन्दर्य की भारतीय अवधारणा पर टिप्पणी करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने कहा है कि भारतीय सौन्दर्यदर्शन अद्वन्द और सामरस्य का दर्शन है, अभिव्यक्ति के स्तर पर यह सौन्दर्य है और अनुभूति के स्तर पर आनन्द है ।

इस विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन काव्यशास्त्र में 'सौन्दर्य की सत्ता को महत्त्व दिया गया है यद्यपि इसे किसी शास्त्र के नाम से अभिहित नहीं किया गया है परन्तु इसकी सत्ता को भी स्वीकृति दिया गया है। अलंकार सिद्धान्त के समर्थक अलंकार को सौन्दर्य का पर्याय मानते हैं तो रीतिसिद्धान्त के अनुयायी सौन्दर्य के वस्तुगत रूप के पक्षधर हैं। विभिन्न कवि आलोचकों के विचारों के आलोक में यह निर्णयपूर्वक कहा जा सकता है कि भारतीय दृष्टि सौन्दर्य के भावनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ पक्ष के समन्वित स्वरूप को महत्त्व प्रदान करती है। यहाँ कुछ विद्वानों ने सौन्दर्य के भाव पक्ष को महत्ता दी है तथा कुछ ने वस्तुनिष्ठ दृष्टि से उसके तत्त्वों की चर्चा की है। कितना ही प्रयास करने पर भी ये विद्वान वस्तु एवं भाव को सर्वथा पृथक–पृथक रखकर अपने विचारों की अभिव्यक्ति देने में समर्थ नहीं हो सके हैं। अन्ततः हम यही कह सकते हैं कि सौन्दर्य के लिए स्वरूप एवं प्रभाव, दोनों का होना तो अति आवश्यक है ही, साथ सौन्दर्य के दृष्टा में सहृदयता का गुण भी अपेक्षित है, क्योंकि इसके अभाव में सौन्दर्य का वास्तविक आकलन सम्भव नहीं है। यही भारतीय अवधारणा का मूल रहस्यात्मक तत्त्व है ।

सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय पुरातनता

वैदिक काल से लेकर आज तक सौन्दर्य का विवेचन होता आया है। सौन्दर्य के सही स्वरूप तक पहुँचने के लिए हमें अलग–अलग काल में साहित्य दर्शनों एवं विद्वानों की विचारधाराओं से गुजरना होगा क्योंकि समय एवं परिस्थिति के हिसाब से सौन्दर्य की परिभाषा भी बदलती है। वास्तविक रूप से देखा जाए तो समय संसार का एकमात्र सत्य है। जो हमेशा गतिमान है। समय की इस गतिशीलता के साथ परिवेश भी बदलता है और परिवेश के साथ–साथ मनुष्य में भी बदलाव आता है एवं उसकी सुंदरता के दृष्टिकोण में भी बदलाव आता है।

वैदिक काल के मनुष्यों की सुंदरता विषयक चेतना और रामायण काल के मनुष्य की सुन्दरता विषयक चेतना में बहुत अन्तर है। जहाँ एक तरफ वेद कालीन मनुष्य का मन प्रकृति के दिव्य और आध्यात्मिक रूपों में रमण करता था ,वही रामायण युगीन समाज सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है।

लोगों के सामने सत्य नैतिक अनैतिक आदि प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होने लगी । इन समस्याओं से टकराते हुए मानव हार सा गया था। इस समय मनुष्य को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी। जो उनकी समस्याओं का समाधान कर उनके जीवन में सामंजस्य स्थापित कर सकें। राम का जीवन चरित ही मनुष्य की समस्त समस्याओं के समाधान में था।

श्री राम का जीवन समस्याओं के बीच समाधान एवं सुन्दर से भरा हुआ था। मानव को संपूर्ण सौन्दर्य की आभा राम में दिखी यहां वेदकालीन दिव्य सौन्दर्य मानव शरीर सौन्दर्य के रूप में बदल गया है। अतः यदि हम वैदिक युग की अनुभूति को दिव्य सौन्दर्य कहें तो रामायण काल की अनुभूति को मानव सौन्दर्य कह सकते हैं। अतः सौन्दर्य का वर्णन करते हुए रामायणकार ने सुन्दर शब्द के बदले रमणीय, शोभन ,चारूता आदि शब्दों का प्रयोग किया है उदाहरणार्थ

दर्शनम् चित्रकूटस्य मंराकिनाइच शोभते।
अधिक पुरवासच्च मनवे च तव दर्शनात।।

महाभारत में सौन्दर्य का स्वरूप– महाभारत का सौन्दर्य कर्म और संघर्ष का सौंदर्य है, जिसमें शांत रस की एक अपूर्व धारा प्रवाहित रही है। महाभारत काल में भोग की अनन्त लालसा ऐश्वर्य का मद एक ओर कौरवों में है तो दूसरी ओर पाण्डवों के पास नीति, धर्म और मर्यादा का बन्धन है। कौरव के पास भूख की लालसा, ऐश्वर्य का मद इसलिए था कि उन्हें संसार की विराटता का ज्ञान न था जो ज्ञान अर्जुन को प्राप्त था। कृष्ण के उपदेश के माध्यम से अर्जुन को संसार के आनन्द प्रवाह का ज्ञान हो गया था। संसार का रहस्य और अनंतता का ज्ञान होने के बाद व्यक्तिगत सुख–दुःख, माया–मोह, जय–पराजय आदि सब तुच्छ लगता है।"जीवन में विराट दृष्टि से मोह दूर हो जाता है, आँखें उज्ज्वल और तेज युक्त, गति में वीरता और हृदय में एक अद्भुत प्रसाद का आविर्भाव होता है। '' व्यास ने इस गंभीर अनुभव को शांति कहा है"। इस शांतता के अनुभव के बाद वह वैरागी बन जाता है; फिर वह संघर्ष करता रहता है; कर्म करता रहता है और फल की आशा नहीं रखता। कृष्ण ने गीता में कहा है '**कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषुकदाचन**। यहाँ वैरागी होने का मतलब संसार को छोड़कर पर्वत शिखर एवं वनों में रहना नहीं है। सांसारिक जीवन में रहकर संघर्ष करते हुए वैरागी होना और शांति का अनुभव करना है, जिसमें से सौन्दर्य की एक अद्भुत आभा फूटती है।

सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य अवधारणा

सौंदर्य चाहे प्रकृति में हो, चाहे कलाकृति में हो इसके दो पक्ष होते हैं –

i) इन्द्रिय बोध

ii) बुद्धि बोध

पाश्चात्य पुरातनता

पाश्चात्य प्राचीन ग्रीस में सौंदर्य का समान एक केन्द्रीय प्रश्न हैं लेकिन आवश्यक रूप से कला के सवाल से संबंधित नहीं है। यह एक प्रश्न है जो प्लेटो में नैतिकता और राजनीति को छूता है। पाइथागोरियन के ब्रह्माण्ड सम्बन्धी और सौन्दर्य प्रस्तुतियों में संख्यात्मक अनुपातिक सिद्धांत सद्भाव और सौन्दर्य के लिए एक महान भूमिका निभाते हैं।

सौन्दर्य के विषय में काण्ट ने कहा है कि खुशी की धारणा के लिए प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है। एक भावना केवल एक व्यक्ति के लिए मूल्यवान हो सकती है जबकि यह भावना दूसरे की खुशी का कारण नहीं हो सकता है।

हेगले की दार्शनिक प्रणाली में सौन्दर्यशास्त्र को कला के दर्शन के रूप में परिभाषित किया जाता है और कला का उद्देश्य सत्य को व्यक्त करना है।

इसी प्रकार सुकरात ने भी सौन्दर्य के संदर्भ में प्रीति शब्द का प्रयोग कर अध्यात्म सौन्दर्य के बहुत निकट पहुँचा दिया ।

प्लेटो ने कहा था "If anything is beautiful it is beautiful for no other reason than that is partakes of absolute beauty" लेकिन प्लेटो ने शिष्य अरस्तु सौन्दर्य को आध्यात्मिकता के दायरे से हटाकर कला के साथ जोड़ देते हैं।

अरस्तु ने प्लेटो का विरोध करते हुए कहा है कि यदि कोई वस्तु सुंदर है इसलिए नहीं कि वह चांद सौन्दर्य का अंश है अब तो इसलिए कि वह खुद सुन्दर है।

"The beautiful is that good which is pleasant because it is good" अरस्तु का सौन्दर्य चिंतन केवल कला और साहित्य तक ही सीमित है।

बोध प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न –

1 सौन्दर्यशास्त्र मूल रूप से किस भाषा के शब्द से लिखा गया है?

2 सौन्दर्यशास्त्र का क्या अर्थ है ?

3 सौन्दर्यशास्त्र के जनक कौन माने जाते है ?

4 सौन्दर्यशास्त्री पैथागोरस कहाँ के रहने वाले थे ?

5 सौन्दर्यशास्त्र की उत्पत्ति किस विषय से हुई ?

6 सुकरात कला की किस विधा से परिचित थे ?

7 कला सत्य की अनुकृति है, किसकी परिभाषा है?

8 प्लेटो ने कितने प्रकार के ज्ञान का उल्लेख किया है ?

अभ्यास प्रश्न–

1 सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय अवधारणा पर लेख लिखिए ।

4.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई सौन्दर्य और उसके स्वरूप पर आधारित है। साधारणतः हम सौन्दर्य को वस्तु और प्राणी के बाहरी रूप का विषय मान लेते हैं। किसी भी चीज और प्राणी की सुंदरता उसके रंग, उसकी बनावट में निहित मान लिया जाता है। अगर हम सिर्फ बाह्य रूप को ही सौन्दर्य का मानदण्ड मान लें तो यह तर्कसंगत नहीं होगा क्योंकि कोई भी व्यक्ति या प्राणी हर समय हर देश–काल–परिस्थिति में सुन्दर लगता नहीं है। देश–काल के अनुसार सौन्दर्य की परिभाषा बदलती रहती है। चाहे वह प्राणी–जगत हो या कलाजगत इसके बाह्य और आन्तरिक रूपों में सौन्दर्य के अवस्थान को लेकर पुराने जमाने से लेकर आज तक बहुत सारे चिंतकों ने इस पर अपना मत प्रकट किया है।

प्रायः लोग जिस भाषा को बोलते हैं उसकी भली–भांति उसको समझ होती है किसी भाषा में लिखी गई कविता के विषय में एक व्यक्ति उसको प्रेम और सौन्दर्य से युक्त

अनुभव करता है जबकि दूसरा व्यक्ति उसी कविता में कहीं कोई भी सौन्दर्य नहीं देखता है और कविता की अपेक्षा करता है । इस विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिकों के विचार अलग–अलग हैं । पाश्चात्य दार्शनिक एडिसन इन्द्रिय अनुभव को ही सौन्दर्यानुभव का कारण मानते हैं । इसके अनुसार इन्द्रियाँ मन को सर्वाधिक प्रकार से परिपूर्ण कर देती हैं जैसे नेत्र ऐसी इन्द्रिय हैं जो सर्वाधिक समय तक अपनी विषय वस्तु के भोग में बिना रुकावट निरंतर चेष्टावान रह सकती है । इसी प्रकार एडिसन ने अन्य इन्द्रियों को ही सौन्दर्यानुभव का माध्यम या कारण माना है।

काण्ट का ज्ञानमीमांसा सिद्धान्त एवं स्वतन्त्र कलाशास्त्र

काण्ट के मतानुसार कलाकृतिजनित अनुभव स्वतन्त्र कल्पना एवं उस स्वतन्त्र बुद्धिशक्ति (understanding) के उस पारस्परिक सामंजस्य का अनुभव है जो इन्द्रियमात्रबोध्य प्रत्यक्ष (intuition) के विषय के रूप के अवबोध (perception) मात्र से संबन्धित है। यह सुखदायक (pleasant) एवं कल्याणकारी अनुभव से भिन्न है। यह स्वार्थनिरपेक्ष है। यह सार्वजनिक रूप में प्रामाणिक है (universally valid) साधारण सविकल्प इन्द्रिय बोधात्मक अनुभव (determinate empirical experience) से भिन्न कलाकृतिजनित अनुभव के स्वरूप अथवा प्रकृति को स्पष्टतया समझने के लिए यह आवश्यक है

4.4 शब्दावली

1. सपृंक्त – जुड़ा हुआ/मिला हुआ
2. चेष्टावान – प्रयासरत
3. प्रामाणिक – स्वतः सिद्ध
4. संघर्ष –प्रयत्न/चेष्टा
5. घनिष्ठ – निकट/समीप
6. वस्तुनिष्ठ – वस्तुपरक

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद् काशी वि. सं. 2007
2. भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
3. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,
4. अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
5. औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र, व्याख्याकार. व्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
6. काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या–विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल

लिमिटेड वाराणसी

7. काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहर चन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973
8. काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना, 1985
9. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
10. काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
11. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
12. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुकनाथशर्मा एवं बलदेव उपाध्याय, चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
13. अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
14. ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1911
15. वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 2007
16. व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1987

4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग्रीक
2. इन्द्रिय जनित अनुभूति
3. बाम गार्टेन
4. यूनान
5. दर्शन शास्त्र
6. मूर्तिकारी
7. प्लेटो
8. तीन

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखेंगे।

इकाई 5 पाश्चात्य सौन्दर्यदर्शन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य अवधारणा

5.3 सारांश

5.4 शब्दावली

5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :

- सौन्दर्य के बारे में जान सकेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य अवधारणा को जान सकेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्र के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के दृष्टिकोण को जान सकेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्र से सम्बन्धित विस्तृत दृष्टिकोण का विकास होगा ।
- सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य अवधारणा को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

पाश्चात्य जगत में सौन्दर्य से संबंधित विचार ईसा पूर्व 580 से प्रारम्भ हो गए थे। सौन्दर्य के बारे में प्रारम्भिक सूत्र देने का श्रेय प्राचीन यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस और सुकरात को है। पाइथागोरस के चिंतन में सौन्दर्य विषयक विचार बहुत कम प्राप्त होते हैं, पर कहीं–कहीं उनके विचार सौन्दर्य स्वरूप को उद्घाटित कर जाते हैं। उनके अनुसार "विश्व दिव्य और पूर्ण है क्योंकि यह सीमित है और उसके विभिन्न भाग परस्पर क्रमबद्ध रूप से जुड़े हुए हैं। क्रमबद्धता पूर्ण और सुचारू जीवन के लिए आवश्यक है। इस क्रमबद्धता को भी हम प्राणियों के जीवन में पाते हैं। दिन के बाद रात और एक ऋतु के बाद दूसरी ऋतु एक विशेष क्रम में आते हैं। आकाश में तारों का एक विशेष गति, सही घूमना क्रमबद्धता का परिचायक है।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है। कि उस समय दिव्य जिसका प्रयोग सौन्दर्य के अर्थ में किया जा सकता है; के लिए सामंजस्य और क्रमबद्धता को महत्व दिया गया है। इनके अलावा सुकरात ने भी सौन्दर्य की व्याख्या की है। उपयोगितावादी दृष्टि के अनुरूप सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए कहते हैं जो वस्तु उपयोगी है वह उस कार्य के लिए सौन्दर्यशाली है और जो वस्तु उपयोगी नहीं है उसमें सौन्दर्य नहीं है"। उन्होंने यह नहीं बताया कि इस उपयोगिता का आधार क्या है। शायद उपयोगिता से उनका मतलब प्रीति, आह्लाद या आनंद से होगा क्योंकि उन्होंने यह कहा है "जो नेत्रों, श्रवण के माध्यम से प्रीतिकर हो वही सुन्दर है।" सुकरात ने सौन्दर्य के सन्दर्भ में 'प्रीति' शब्द का प्रयोग कर उसे अध्यात्म सौन्दर्य के बहुत निकट पहुँचा दिया है।

सौन्दर्यशास्त्र के लिए पाश्चात्य जगत् में "ऐस्थेटिक्स" शब्द का प्रयोग हुआ है। जो कि यूनानी परम्परा से आया है। इस शब्द का अर्थ है – अनुभूति अथवा उपलब्धि तात्पर्य यह है कि किसी वस्तु को देखकर मनुष्य में जो प्रसन्नता अथवा आह्लाद की अनुभूति होती है, वह ही सौन्दर्यशास्त्र है। सौन्दर्यानुभूति का अन्ततः आध्यात्मिक अनुभूति की श्रेणी में अन्तर्भाव होता है। सौन्दर्यशास्त्र को स्वतन्त्र कलाशास्त्र भी कहते हैं। सौन्दर्यशास्त्र को जानने से पूर्व "सौन्दर्य" क्या है यह जानना आवश्यक है। "सौन्दर्यबोध" सौन्दर्य शब्द अपने पारिभाषिक अर्थ में आँग्ल शब्द ''Beauty'' (ब्यूटी) का पर्याय है। इस प्रकार से ब्यूटी शब्द का अर्थ है रसिकभाव, रसिकता अथवा श्रृंगारी–पुरुष–गुण। फ्रांसीसी भाषा में इसका समानार्थक शब्द "बैल" हुआ; लातीनी भाषा में "पुलकुम", यूनानी भाषा में "कलोस" तथा रूसी भाषा में "क्रसोता" शब्द प्राप्त होता है।" सौन्दर्य शब्द के दो आधार हैं। पहला – प्रकृति, दूसरा– कला। इस प्रकार से सौन्दर्य के चार स्तर होते हैं – शारीरिक सौन्दर्य, मानसिक सौन्दर्य, नैतिक सौन्दर्य, प्रज्ञात्मक सौन्दर्य । प्रज्ञात्मक सौन्दर्य ही वस्तुतः चिर सौन्दर्य है।

सौन्दर्यशास्त्र निश्चय ही ऐन्द्रिय संवेदनाओं का विज्ञान है जिसका लक्ष्य सौन्दर्य है। तत्त्वमीमांसा मनोविज्ञान भी सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत आ जाते हैं। भारतीय आचार्यों ने सौन्दर्यशास्त्र के रूप में रस को काव्य सौन्दर्य शैव अद्वैत के रूप में, वेदान्त के रूप में, सांख्य और न्याय के रूप में, मीमांसा के रूप में, वैष्णव भक्ति सिद्धान्त के रूप में प्रचुरता के साथ उपयोग किया है।

पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र के लिए (स्वतन्त्र कलाशास्त्र) एस्थेटिक्स" शब्द यूनानी भाषा से लिया गया है। यूनानी भाषा में मूल शब्द "एसथिटिकोस" है, जिसका अर्थ है "इन्द्रियगोचर वस्तुओं से सम्बन्धित" अर्थात् अभौतिक मनोमात्र– ग्राह्य वस्तुओं से भिन्न उन भौतिक वस्तुओं से सम्बन्धित जिनका ज्ञान हमें इन्द्रियों से हो सकता है। पृष्ठ ३ स्वतन्त्रकलाशास्त्र द्वितीय भाग (पाश्चात्य)

सौन्दर्य कलाशास्त्र के सिद्धान्तों का विभिन्न समयों में भिन्न–भिन्न चिन्तकों ने अनेक दृष्टिकोणों से सौन्दर्य के अध्ययन के आधार पर किया है। कला–विषयक प्राचीनतम सिद्धान्त निम्नवत हैं–

कला के लक्ष्य के दृष्टिकोण से अर्थात् कलाकृति के उद्देश्य के दृष्टिकोण से प्रतिपादित किए गए हैं–

कला इन्द्रिय सुख का साधन है।

1. कला दृढ़ नियन्त्रित चरित्रोन्नायक इन्द्रिय सुख का साधन है।
2. कला का लक्ष्य उपदेश देना अथवा चरित्र का उन्नयन है।

पुनः कलाकारों के दृष्टिकोण से स्वतन्त्र कलाशास्त्र के सिद्धान्त निम्नवत है –

1. अनुकृति।
2. भ्रान्ति।
3. आदर्शीकृत का प्रतिनिरूपण।

पुनः दर्शक के दृष्टिकोण से कला निरूपण –

- अस्फुट ज्ञान।
- अनुमान।

- अध्यात्मवाद।

यहाँ यह स्पष्ट हो रहा है कि दर्शक में कलाजनित बोध का क्या स्वरूप है। पाश्चात्य देशों में स्वतन्त्र कलाशास्त्र के उपर्युक्त सिद्धान्तों की स्थापना – वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत, काव्य एवं नाट्य कलाओं के आधार पर करते हैं जबकि भारतवर्ष में कला–विषयक सिद्धान्तों की स्थापना प्रधान रूप से नाट्यकला के आधार पर करते हैं।

वस्तुतः कला–सिद्धान्त–विषयक प्राचीनतम ग्रन्थ नाट्यशास्त्र के लेखक भरतमुनि ने अन्य समस्त कलाओं को नाट्यकला के अधीन माना है। भरतमुनि के अनुसार ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, ऐसी कोई शिल्प नहीं है, ऐसी कोई विद्या नहीं है, ऐसी कोई कला नहीं है, ऐसा कोई योग नहीं है और ऐसा कोई कर्म नहीं है जिसका उपयोग किसी–न–किसी अवसर पर नाट्य–प्रदर्शन में न किया जाता हो। जबकि संगीत तथा वास्तु कलाओं के शास्त्रकारों ने यह प्रतिपादित किया है कि कलाजन्य अनुभव को उत्पन्न करने में संगीत तथा वास्तु दो कलाएँ स्वतन्त्र हैं। फिर भी संगीत एवं वास्तु–कला–विषयक ग्रन्थों में जो कला के भाव पक्ष की व्याख्या की गई है, उन पर (उन व्याख्यानों पर) आचार्य भरतमुनि प्रतिपादित सिद्धान्तों का भी प्रभाव दिखाई देता है।

पाश्चात्य विद्वानों के विचार सौन्दर्य तत्वानुशीलन के विषय में भारतीयों की अपेक्षा बहुत भिन्न है। सुकरात महोदय सभी ज्ञान से सम्बन्धित विषयों जिसमे काव्य भी आ जाता है तथा आत्मप्रेरणाश्रित नैतिकता तथा सदाचार को तत्व स्वरुप में स्वीकार करते है ।

प्लेटो महोदय विविध ज्ञान विषयों के चिंतन में रत कला विचार के सन्दर्भ में कवियों की तार्किक भावना के प्रकाशन की आवश्यकता को स्वीकार करते है । कला प्रकाशन के लिए वह दिव्य प्रेरणा को मुख्य मानते है ।

हेगेल ने अपने ग्रन्थ फिलोसोफी आफ फाइन आर्ट में मूर्तिरचना कला और चित्रांकन कला को स्वतन्त्र कलाएँ माना है। जबकि भारतीय कलाशास्त्रियों को यह मान्य नहीं है। वे उनको वास्तु कला के ही अधीन मानते है। अतः भारतीय दृष्टिकोण से स्वतन्त्र कलाओं की संख्या तीन है, काव्य, संगीत तथा वास्तुकला । जबकि हेगेल के अनुसार स्वतंत्र कलाएँ पाँच है।

हेगेल के अनुसार "एस्थेटिक्स" शब्द का अर्थ "ललित कलाओं का दर्शन है। लोक–प्रचलित रूप में इसका अर्थ सामान्यतया सौन्दर्य–विषयक मत है– चाहे यह सौन्दर्य कलागत हो, या प्रकृतिगत हो जैसाकि डॉ. कान्तिचन्द्र पाण्डेय के अनुसार भारतीय मत में "ऐस्थेटिक्स" का अर्थ "स्वतन्त्र कलाओं का दर्शन और विज्ञान है" स्वतन्त्र कलाओं का विज्ञान इसीलिए कहते हैं क्योंकि कला की समस्या आरम्भ में कलाकृति के रचना–विधान की समस्या थी। जिन ग्रन्थों में मुख्य प्रतिपाद्य विषय "कला" का दार्शनिक विवेचन है। उसमें मुख्यतः रचना–विधान की ही चर्चा की गई है। साथ ही दार्शनिक विवेचन का उससे घनिष्ठतम सम्बन्ध है।

स्वतन्त्र कलाओं का दर्शन इसीलिए कहा गया है क्योंकि कला से जो अनुभव सहृदय को प्राप्त होता है। उसकी व्याख्या भारतीय दर्शन के विविध सम्प्रदायों के भिन्न–भिन्न मतों के आधार पर की गई है। उसका एक कारण – यह भी है कि काव्य, संगीत एवं वास्तु कलाओं के प्रामाणिक आचार्यों ने प्रतिपादित किया है कि तीनों कलाएँ उनसे प्रतिपादित परब्रह्म के स्वरूप को प्रकट करती हैं। अतएव कलादर्शन के तीन सम्प्रदायों

का प्रादुर्भाव हुआ।

- रसब्रह्मवाद
- नादब्रह्मवाद
- वास्तुब्रह्मवाद

अतः इस प्रसंग में स्वतन्त्र "कला" शब्द का इसलिए प्रयोग किया गया है क्योंकि प्रतिपाद्यमान सिद्धान्त के अनुसार स्वतन्त्र कलाओं का एक निजी स्वतन्त्र महत्त्व है, जिसके कारण इनकी कृतियों में ऐसा अनुभव प्राप्त होता है जो कि स्वभावतः किसी भी वस्तु से उस समय तक प्राप्त नहीं होता है जब तक कि उसे कला के स्वरूप में न देखा जाए। ज्ञातव्य है कि "उपयोगिनी" अथवा "यान्त्रिक कलाएँ" स्वतन्त्र कलाओं से भिन्न हैं एवं दार्शनिक विवेचन की विषय–वस्तु केवल स्वतन्त्र कलाएँ ही हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संसार की कोई आनन्दात्मक अनुभूति कलात्मक अनुशीलन का माध्यम बनती है। इस परिप्रेक्ष्य में कलाओं के साथ ही चारित्रिक उत्कर्ष के विषय (दर्शन, संस्कृति, लोकाचार, आदि) भी इस अध्ययन से जाते हैं। यहाँ उभय आलोच्य ग्रन्थों में प्राप्त होने वाले सौन्दर्यशास्त्रीय तत्त्वों का विवेचन क्रमशः प्रस्तुत है।

केवल शुद्धात्मा से ही शेष है। जीवात्मा अपने मूल रूप में शुद्धात्मा है यद्यपि उसका यह सारतत्व जीवात्मा के निम्नांश अर्थात् प्राणमय आत्मा से अस्फुट तथा मलिन कर दिया जाता है। अतः शुद्धात्मक शक्तियाँ जीवात्मा के लिए पूर्ण रूप से अज्ञेय नहीं है। ऐसे समय में यह जीवात्मा अपने प्रति उन्मुख होती है एवं उस सर्वोच्च रू॰ की का अनुचिन्तन करती है जिससे वर्तमान सुन्दरतापूर्ण भौतिक वस्तु समरूप है और वह आत्मा भौतिक आच्छादन से प्रच्छन्न शुद्धात्मक रूपतत्त्व की प्रत्यभिज्ञा' करने के लिए सशक्त हो जाती है।

5.2 सौन्दर्यदर्शन की पाश्चात्य अवधारणा

1. प्लेटो और अरस्तू का मत –

प्लेटो प्रत्ययवादी दार्शनिक होने के कारण प्रत्यय, विचार या प्रज्ञा में सौन्दर्य की स्थिति मानता था । इसके अलावा वह शारीरिक, मानसिक और नैतिक सौंदर्य को महत्त्व देता था । पर इसको वह क्षणस्थायी मानता था। उन्होंने प्रज्ञात्मक सौंदर्य को सबसे ऊँचा मानते हुए इससे आत्मचेतन का (जो शिव रूप है) का प्रतीक ठहराया है । आत्म–चेतन का जगत सौंदर्यबोध से कहीं ऊपर, विकारों से मुक्त, आनंद से भरा होता है। यही आत्मचैतन्य जो सौंदर्य रूप है, इसका अनुकरण प्रकृति–जगत या कला–जगत का सौंदर्य है। उन्होंने खुद कहा है "सौंदर्यवान वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं तथा समाप्त हो जाती हैं, पर यह सौंदर्य ना तो प्रारंभ ही होता है, ना समाप्त होता है। यह शाश्वत, अपरिवर्तनीय और अविनाशी है। सौंदर्यवान वस्तुएँ उसी शाश्वत सौंदर्य की क्षणिक अभिव्यक्ति है"।" वह सौंदर्य को एक आध्यात्मिक सत्ता मानते हुए आत्मवादी सौंदर्य का सूत्रपात करते हैं, जिसका विकास हम प्लेटोनिस, अगस्टिन, मसीही आदि के विचारों में देखते हैं।

प्लेटो ने कहा था "If anything is beautiful it is beautiful for no other reason than that it partakes of absolute beauty" पर उनके शिष्य अरस्तु, सौंदर्य को आध्यात्मिकता के दायरे से हटाकर कला के साथ जोड़ देते हैं ।

उन्होंने प्लेटो का विरोध करते हुए यह कहा कि कोई वस्तु सुंदर है, इसलिए नहीं है। कि वह चरम सौंदर्य का अंश है; परंतु इसलिए है कि वह खुद श्रेय है. सुंदर है। "The beautiful is that good which is pleasant because it is good" अरस्तु का सौंदर्य–चिंतन कला और साहित्य से आगे नहीं बढ़ पाया है।

2. मध्ययुगीन पश्चिमी सौंदर्य दर्शन –

संत अगस्टिन सौंदर्य को ईश्वरीय सत्ता के रूप में देखते हैं और सौंदर्य के विधान में क्रम, अन्विति और अनुपात आदि को महत्व देते हैं। उनका मानना कि ब्रह्माण्ड के सारे पदार्थ एक क्रम में रहते हैं और यह ईश्वर के कारण संभव हो पाया है। उसके अनुसार "ब्रह्माण्ड क्रम में बढ़ता है क्योंकि ईश्वर क्रम को प्रेम करता है तथा वह उससे श्रेष्ठ भी है"।" ब्रह्माण्ड ईश्वर का सृजन होने के कारण उसका सौंदर्य ईश्वरीय सौंदर्य का आभास है वह सौन्दर्य के लिए एक क्रम, सुसंगति के साथ–साथ रंगों की मधुरिमा को आवश्यक मानता है और इसकी बात करते हुए उससे एक आध्यात्मिक रहस्यमयी बाना पहना देता है। "The beauty of any material object is congruence of parts together with certain sweetness of colours--- but how great will be the sweetness of the colour when the righteous shall shine forth like the sun on the kingdom of their fathers"

एक्विनास जो अगस्टिन के नौ शताब्दियों के बाद आए, उन्होंने अगस्टिन की कुछ बातों पर सहमति प्रकट करते हुए भी सौंदर्य संबंधित कुछ मौलिक स्थापनाएं दी हैं। उन्होंने सौंदर्य की विशेषता के रूप में संपूर्णता, सामंजस्य और दीप्ति को स्थान दिया है। सारी वस्तुएँ सुंदर तब होती हैं जब वे सर्वोत्तम, शुभ, ईश्वर के समान हो जाए। उनकी सबसे महत्वपूर्ण देन यह है कि वह आनन्द को सौंदर्य के साथ जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार "सुंदर वस्तु वही है जिसकी अवधारणा आनन्दपूर्वक की जाए"। अतः सौंदर्य को देखने पर हमें आनन्दानुभूति होती है और यह शिवत्व का एक अंग है।

3. आधुनिक पाश्चात्य सौन्दर्य –

आधुनिक पाश्चात्य जगत में सौंदर्य की दार्शनिक व्याख्या करने वालों में काण्ट और हीगल आगे है। काण्ट सौंदर्य को आत्मगत सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं और इसे इंद्रियबोध से भी ऊँचा, भावबोध की अभिव्यंजना मानते हैं। वे सौंदर्य को सुखवाद, उपयोगितावाद के घेरे से बाहर निकालते हुए उसमें सौंदर्य की स्थिति मानते हैं जो सिर्फ आनन्ददायक हो। आनंद से उनका मतलब पार्थिव आनन्द से नहीं, उससे आगे उद्देश्यहीन आनन्द से है। उन्होंने कहा है सौन्दर्य प्रदत्त आनन्द का लक्ष्य कोई पार्थिव आवश्यकता नहीं है। उनके विचार से अगर सौंदर्य का लक्ष्य आनन्द प्रदान करना है तो वह सबके लिए आनन्द प्रदायक होगा। वे सौंदर्य को इंद्रिय, तर्क, रूचि विशेष से मुक्त मानते हैं। उनके अनुसार "इसमें (सौन्दर्य में) तर्क की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसमें किसी भी प्रकार की रुचि का कोई महत्व नहीं होता"। " काण्ट का सौंदर्य, उपयोगिता, इंद्रियबोध से मुक्त होकर प्रयत्यात्मक, नैतिक, सत्य स्वरूप बन जाता है। हीगल सौंदर्य की दार्शनिक व्याख्या करने में काण्ट से भी आगे रहे। उनका सौंदर्य– चिंतन सर्वोच्च चेतना की आधार–भूमि पर स्थित है। यह सर्वोच्च चेतना प्रत्यभिज्ञा दर्शन के शिवरूप के बहुत निकट पड़ती है। उन्होंने मनुष्य में इस चेतना के सौंदर्य को सबसे श्रेष्ठ

माना है। वे बाह्य और प्राकृतिक सौंदर्य को आत्मगत सौंदर्य की छाया मानते हुए कहते हैं "Thus the higher truth is spiritual being that has attained a shape adequate to the conception of spirit" वे इस चेतन सौन्दर्य को किसी बाह्य प्रभाव से मुक्त और स्वतंत्र मानते हैं। वे उस सौंदर्य का आरोप प्रकृति पर करते हुए भी प्रकृति–सौंदर्य को ज्यादा महत्व न देते हुए कलागत– सौंदर्य को महत्व देते हैं। वे सौन्दर्य की सही सिद्धि कला में देखते हैं। कलागत– सौंदर्य, प्रकृतिगत–सौन्दर्य से आगे मानव आत्मा के सौंदर्य को वह श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि वह परम सत्ता का प्रतिरूप है।

बोध प्रश्न /अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न –

1. पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र के जनक कौन हैं ?
2. सौंदर्यशास्त्र शब्द की उत्पत्ति किस भाषा से हुई है ?
3. किन्ही दो पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्रियों के नाम बताइए ?
4. किन्ही तीन प्रकार के ज्ञान का उल्लेख किस सौंदर्यशास्त्री ने किया है?
5. हरीश चन्द्र पाण्डेय ने किस शास्त्र की रचना की है ?
6. सौंदर्यशास्त्र का पर्यायवाची शब्द क्या है?

अभ्यास प्रश्न –

1. पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्र के विषय मे एक लेख लिखिए।

5.3 सारांश

चाहे भारत के विद्वान हो या पाश्चात्य सभी ने भाषा की थोड़ी सी हेरफेर से सौंदर्य को शुद्ध– चित्त , दिव्य– चित्त या आत्म–चैतन्य में देखा है, जो परमात्मस्वरूप है। सभी ने बाह्य या रूपगत सौन्दर्य से ज्यादा, आत्मगत–सौन्दर्य को श्रेष्ठ माना है। जब मनुष्य अपना चित्त परमात्मा से जोड़ता है तब उसे सौंदर्य की अनुभूति होती है और फिर वह चिर आनन्द के सागर में गोते लगाता रहता है।

लॉक के मतानुसार यथार्थ ज्ञप्तियां वे हैं जिनका अस्तित्व वस्तुओं की यथार्थ सत्ता अथवा अस्तित्व के अनुरूप होता है । इस प्रकार से सरल ज्ञप्तियां इसलिए यथार्थ (real) नहीं हैं क्योंकि वे बहिर्जगत में वर्तमान वस्तुओं की प्रतिकृतियां हैं वरन् इसलिए यथार्थ हैं क्योंकि वे बहिर्जगत में वर्तमान वस्तुओं की शक्तियों के प्रभाव मात्र हैं । परन्तु मिश्रित ज्ञप्तियां न तो बहिर्भूत वस्तुओं के स्वरूप की होती हैं और न तो बुद्धि से स्वतन्त्र रूप में उनकी कोई सत्ता ही होती है । वे बुद्धि की सृष्टियाँ हैं। इस प्रकार की कुछ बौद्धिक रचनाएँ स्वयं वस्तुओं के 'मूलरूप' होने के कारण यथार्थ हैं । लॉक के मतानुसार इस प्रकार की 'मूलरूप' सम्बन्धी' रचनाएँ केवल गणितशास्त्रियों की रचनायें हैं– कवियों की नहीं । वे यह भी मानते हैं कि हमारी बुद्धि में सौन्दर्य तत्व की कोई आधार भूमि नहीं होती । इसकी उत्पत्ति केवल आचारों तथा शिष्ट व्यवहारों से होती है ।

इस प्रकार से लॉक के मतानुसार सौन्दर्य एक मिश्रित ज्ञाप्ति है इसकी गणना मिश्रित प्रकार के अन्तर्गत की जा सकती है क्योंकि विविध प्रकार की ज्ञाप्तियों से इसकी

रचना होती है । कलागत सौन्दर्य न तो बहिर्भूत वस्तु के समरूप है और न 'मूल रूप' सम्बन्धी ही है जैसे कि गणितशास्त्रज्ञों की रचनायें होती हैं । अतएव सौन्दर्य तत्व यथार्थ नहीं है ।

एक चिदात्मक एकता है और उसका साक्षात्कार केवल आध्यात्मिक ज्ञान से चिदात्मा के अन्दर ही किया जा सकता है। आध्यात्मिक ज्ञान के साधन से प्राप्त यह नूतन अन्तर्वस्तु इन्द्रियबोध्य निरूपण के साथ इस प्रकार से अपवाद नहीं है कि परकथित (इन्द्रिय बोध निरूपण) से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। यह कहना अधिक समीचीन होगा कि इस साक्षात इन्द्रियबोध अस्तित्व से यह मुक्त किया जाता है।

संक्षेपतः यह कह सकते हैं कि स्वच्छन्द क्रमदशा में कला का उद्देश्य उस आध्यात्मिक क्रिया का स्वतन्त्र और निश्चित रूप में निरूपण है जो चित्स्वरूपिणी बुद्धि के आन्तरिक संसार में आध्यात्मिक क्रिया के रूप में अवगत होती है इस प्रकार के उद्देश्य के अनुसार कला केवल ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष के लिए क्रियानिष्ठ नहीं हो सकती है। कला को स्वतन्त्रता पूर्वक उस आन्तरिक जीवन में प्रवेश करना चाहिए जो उसके उद्देश्य से इस प्रकार से एकीभूत हो जाता है जैसे कि वह स्वयं उस उद्देश्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है अर्थात् प्रत्यक्षकर्ता एवं एक बाह्य विषयवस्तु का भेद नष्ट हो जाता है । प्रदर्शित अन्तर्वस्तु आत्मा के जीवन का एक अंश होता है। अन्य शब्दों में कहें तो यह कहेंगे कि यह कला अपने को आत्मा की घनिष्ठता (intimacy) को, हृदय को अर्थात् उस भावावेगात्मक जीवन' को सौंपती है। जो स्वयं चिदात्मा (spirit) का माध्यम है।

वास्तु प्रतीकात्मक कला है। मूर्तिकला शास्त्रीय (classical) कला है एवं चित्रकला, संगीतकला एवं काव्यकला स्वच्छन्द कलाएं हैं। अपने निम्न– तमरूप में परतश्व को प्रकट करने के लक्ष्य की पूर्ति कला नहीं कर सकती । इसका क्रमिक उन्नयन होता है। इस उन्नयन के पथ पर यह चिदात्मा के विभिन्न रूपों को पार करती है। नाटक में इस उन्नयन का अन्त हो जाता है। काव्य सर्वोत्कृष्ट कला है और नाटक सर्वोत्कृष्ट काव्य है । परन्तु इसी ही कारण से साथ ही साथ काव्यकला सब कलाओं का विलयीकरण (dissolution) भी है एवं चिदात्मा के उच्चतर स्वरूप अर्थात् 'धर्म' रूप अभिव्यक्त होने के लिए एक मध्यवर्ती दशा है ।

5.4 शब्दावली

1. अपवाद – सामान्य नियम से भिन्न
2. अवगत – ज्ञात
3. नैतिक – नीति सम्बन्धी
4. क्रमबद्ध – क्रमानुसार व्यवस्थित
5. चिर – दीर्घकालीन

5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पाश्चात्य स्वतंत्र कलाशास्त्र – कांति चंद्र पाण्डेय
2. वक्रोक्ति जीवितम – आचार्य कुन्तक
3. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद्

काशी वि. सं. 2007

4. भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
5. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,

5.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. बाम गार्टेन
2. यूनानी
3. अरस्तु, बाम गार्टन
4. प्लेटो
5. स्वतंत्रकला शास्त्र
6. स्वतंत्रकला शास्त्र

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इनके उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखेंगे।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सौन्दर्यशास्त्र का व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

6.3 सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखा

6.4 सारांश

6.5 शब्दावली

6.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- सौन्दर्यशास्त्र का व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा का अध्ययन कर पायेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखा का अध्ययन कर पायेंगे।
- इसमें प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली के बारें में जान सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

सौन्दर्यशास्त्र सभी ललितकलाओं का शास्त्र है और उसकी सीमा काव्य के साथ सभी काव्येतर कलाओं–स्थापत्य,मूर्ति, चित्र और संगीत तक फैली हुई है। इसलिए सौन्दर्यशास्त्र मात्र काव्यशास्त्र नहीं, बल्कि कलाशास्त्र है। इस तथ्य को हम दूसरे ढंग से भी उपस्थित कर सकते हैं कि काव्यशास्त्र सौन्दर्यशास्त्र की एक अंगीभूत शाखा है क्योंकि इसका कारण यह है कि काव्यशास्त्र जहाँ केवल काव्य को प्रधानतः दृष्टि में रखकर उसकी आलोचना या अभिशंसा प्रस्तुत करता है, वहाँ सौन्दर्यशास्त्र सभी ललितकलाओं के सर्वसामान्य, किन्तु प्रधान तत्वों का आलोचन और विश्लेषण प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत इकाई 'सौन्दर्य शास्त्र की रूपरेखा में' सौन्दर्यशास्त्र का व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा एवं उसकी रूपरेखा को प्रस्तुत किया जायेगा।

6.2 सौन्दर्यशास्त्र का व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

सौन्दर्यशास्त्र 'ऐस्थेटिक' शब्द का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ है। 'ऐस्थेटिक' शब्द यूनानी भाषा से लिया गया है जिसका मूल रूप 'Atoqntikos' है। यही यूनानी शब्द बाद में 'ऐस्थेसिस' (Aesthesis) हुआ जिसका अर्थ 'ऐन्द्रिय सुख की चेतना' हुआ। इसी 'ऐस्थेसिस शब्द से 'ऐस्थेटिक' शब्द बना। हिन्दी भाषा में इसे 'सौन्दर्यशास्त्र' या 'नन्दनशास्त्र' के रूप में जाना जाता है। 'ऐस्थेटिक्स' का शाब्दिक अर्थ ऐन्द्रिय प्रत्यक्षों का ज्ञान के माध्यम से किया गया अध्ययन है। बाद में 'ऐस्थेटिक्स' उस शास्त्र को कहा जाने लगा जो ऐन्द्रिय बोध से प्राप्त सौन्दर्यानुभूति के आत्मिक आनंद का विश्लेषण करता है।

प्रारम्भ में सौन्दर्यशास्त्र दर्शनशास्त्र का ही एक अंग था। इसे तत्व दर्शन, आचार–शास्त्र तथा मनोविज्ञान ने प्रभावित किया जिससे इसका स्वरूप विकसित होता गया। सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत चाक्षुष एवं श्रवण दोनों ऐन्द्रिय बोधों की प्रमुखता रही है क्योंकि समस्त इन्द्रियों में से ये दो इन्द्रियाँ ही सत्य के अधिक निकट है। इसके अतिरिक्त सौन्दर्यशास्त्र में तीन प्रकार के सौन्दर्य पर विचार किया जाता है–

1. ऐन्द्रिय सौन्दर्य
2. विधानगत सौन्दर्य
3. अभिव्यक्ति सौन्दर्य

पश्चिम में भी 18 वीं शताब्दी से पूर्व इस प्रकार के शास्त्र का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। 'ऐस्थेटिक' शब्द का प्रथम अर्थ विकास 'ऐस्थटिक वह शास्त्र है, जिसका संबंध कला और प्रकृति में व्याप्त समग्र **'सुन्दर'** तथा **'उदात्त'** के रूप में हुआ। 1750 ई. में जर्मन विद्वान ऐलेक्जेण्डर बाउमगार्टेन ने इसे दर्शनशास्त्र की एक शाखा के रूप में स्वीकार किया तथा अपने ग्रंथ 'ऐस्थेटिक' में सौन्दर्य तथा कला का क्रमबद्ध विवेचन करने वाले इस शास्त्र को सौन्दर्यशास्त्र के नाम से संबोधित किया। अब तक दार्शनिकों ने ऐसे किसी शास्त्र की कल्पना नहीं की थी किन्तु कहीं–कहीं विभिन्न कलाओं के विषय में चितंन की परम्परा अवश्य प्राचीन थी। **बाउमगार्टेन** ने ही इसे सर्वप्रथम एक शास्त्र के रूप में 'सौन्दर्यशास्त्र ऐन्द्रिय ज्ञान का विज्ञान कहकर परिभाषित किया है। **कांट** ने संवेदनाओं के दार्शनिक विवेचन को सौन्दर्यशास्त्र कहा।

समस्त कलाओं में निहित सामान्य आधारभूत तत्त्वों के दर्शन के रूप में सौन्दर्यशास्त्र के अर्थ–निर्धारण का समर्थ प्रयास जर्मन विद्वान **हीगेल** ने किया। इन्होंने अपने ग्रंथ 'द फिलॉसफी ऑफ फाइन आर्ट' में कहा है कि सौन्दर्यशास्त्र का संबंध सौन्दर्य के संपूर्ण क्षेत्र से माना जा सकता है तथापि वास्तविक अर्थ में सौन्दर्यशास्त्र का संबंध ललितकलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौन्दर्य से है न कि अन्य माध्यमों से अभिव्यक्त सौन्दर्य से है। हीगेल ने सौन्दर्यशास्त्र को 'ललितकलाओं का दर्शन' कहा है इसीलिए कुछ विचारक 'ऐस्थेटिक्स' को 19 वीं शताब्दी का हीगेलीय आविष्कार मानते है। हीगेल ने अपनी प्रतिभा के बल पर बिखरे हुए सूत्रों को व्यवस्थित करके एक विराट सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया था।

हीगेल के पश्चात् जर्मन विद्वान **क्रौचें** ने सौन्दर्यशास्त्र को स्वतंत्र एवं स्वतः संपूर्ण विचार प्रणाली के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने 'ऐस्थेटिक' को अभिव्यक्ति की पुनः प्रत्यक्षात्मक तथा कल्पनात्मक क्रियाओं का विज्ञान माना। इनके मतानुसार सौन्दर्यशास्त्र का विषय मानव की कल्पना, पुनः प्रत्यक्ष तथा अभिव्यक्ति से संबंधित है।

सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा में मनोवैज्ञानिक विचारक **'फैचनर'** (1801–1887) ने सौन्दर्यशास्त्र का संबंध मनोविज्ञान या प्रयोगात्मक अनुभव से जोड़कर इसे नयी दिशा दी तथा प्रयोगात्मक सौन्दर्यशास्त्र की स्थापना की। इस दृष्टि से सौन्दर्यशास्त्र को सौन्दर्य की अनुभूति या आनंद तथा कला–सृजन या कलाकृति का अध्ययन कने वाला शास्त्र कहा गया। तत्पश्चात् मार्क्सवादी विचारधारा में सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक आर्थिक विकास के ऐतिहासिक संदर्भ में सौन्दर्यबोध का अध्ययन किया गया, किंतु यह मत समाजवादी अधिक था।

आधुनिक युग में दार्शनिक सौन्दर्यशास्त्र के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई तथा समस्त विचारों में संतुलन का प्रयास किया गया। **लैंगर** के अनुसार 'सौन्दर्यशास्त्र

ललितकलाओं के दार्शनिक विकल्पों तथा समस्याओं का सैद्धान्तिक निरूपण है। लैंगर ने सौन्दर्यशास्त्र का संबंध अभिव्यक्ति से नहीं माना। उन्होंने कला के प्रभाव–पक्ष के विवेचन–विश्लेषण को ही प्रधान विवेच्य विषय माना।

इस प्रकार कहने का आशय यह है कि 'एस्थेटिक्स' का शाब्दिक अर्थ (साथ ही प्रारम्भ में प्रचलित अर्थ) ऐन्द्रिय प्रत्यक्षों का ज्ञान के माध्यम की दृष्टि से किया गया अध्ययन है। किन्तु बाद में 'एस्थेटिक्स' उस शास्त्र को कहा जाने लगा, जो ऐन्द्रिय बोध से प्राप्त सौन्दर्य भावना के मनोमय आनन्द का विश्लेषण करता है।

6.3 सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखा

सौन्दर्यशास्त्र के अर्न्तगत विचारणीय ऐन्द्रिय बोधों या प्रत्यक्षों में प्रायः चाक्षुषः और श्रावण प्रत्यक्षों की प्रमुखता रहती है। दूसरी बात यह है कि सौन्दर्यशास्त्र के अर्न्तगत प्रधानतः तीन प्रकार के सौन्दर्य पर विचार किया जाता है–ऐन्द्रिय सौन्दर्य विधानगत सौन्दर्य और अभिव्यंजित सौन्दर्य। सौन्दर्य के शेष प्रकार भी 'एस्थेटिक्स' के अर्न्तगत विवेचित होते रहे है किन्तु प्रधानतः उक्त तीन प्रकारों को ही मिलती रही है। यहाँ यह धारणा समीचीन मालूम पड़ती है कि प्रथम अर्थ विकास के अनुसार एस्थेटिक्स वह शास्त्र है, जिसका सम्बन्ध कला और प्रकृति में व्याप्त समग्र 'सुन्दर' और 'उदात्त' से है। कहा जाता है कि इसी अर्थ में 'एस्थेटिक्स' शब्द का प्रचार जर्मनी, फ्रांस, इग्लैण्ड, इटली और हालैण्ड में हुआ। इस अर्थारोहण के पश्चात् 'एस्थेटिक्स' का विषय सौन्दर्यानुभूति का सम्पूर्ण क्षेत्र बन गया है। किन्तु इसके बाद भी 'एस्थेटिक्स' का उचित अर्थनिर्धारण या व्यपदेश, परिसीमन पूर्णरूपेण नहीं हो सका। (William Knight, The Philosophy of the Beautiful : John Murry, London, 1891 Preface P. 6-7)

पाश्चात्य देशों के समान ही पूर्वी देशों में भी सौन्दर्यशास्त्रीय चितंन–परम्परा मिलती है। पाश्चात्य कला–चितंन का प्रमुख केन्द्र 'सौन्दर्य' है। जापान में 'यूगेन' (कलाकृति के माध्यम से व्यंजित पदार्थगत आंतरिक गहन सौन्दर्य) को कला चितंन का आधारभूत तत्व माना गया। चीन में ध्वनि बोधकसिद्धांत के द्वारा कला–चितंन की अवधारणा की गयी। भारत में कला–चितंन तथा सौन्दर्यशास्त्र का विशिष्ट अन्वेषण 'रस–सिद्धांत' द्वारा किया गया। भारतीय कला दर्शन के अनुसार चेतन, अचेतन तथा अवचेतन मन से सृजन का प्रारम्भ होता है, इसलिए कला की रूप सृष्टि में व्यष्टि ही नहीं समष्टि भी अपनी छवि दर्शाती है। यही कला की सार्वभौमिकता है। कला एक ही न रहकर सर्वमय, सर्वकालिक तथा अमर हो जाती है। कला में जड़ कुछ नहीं होता क्योंकि इसमें चैतन्य की अभिव्यक्ति होती है। भारतीय धर्म ऋषियों ने देखा कि आत्मा से बढ़कर और आत्मा के अतिरिक्त विश्व में कुछ भी प्रिय नहीं है। जो प्रिय है, वह सुंदर है, आनन्द है, रस है। **रविन्द्रनाथ ठाकुर** ने भी कहा था कि 'प्रेम से अधिक सुंदर यहाँ कुछ भी नहीं। 'कला में आत्म–चैतन्य' अपनेपन की प्रतिच्छाया मिलती है। अचेतन, स्थूल माध्यम से चेतना का चमत्कार दर्शाना यही कला का कृतित्व है। इस प्रकार सुन्दर की अनुभूति में आत्मा का ही साक्षात्कार होता है। जिस रूप में प्रियतम आत्म–चेतना का विलास नहीं वह अर्थहीन है। जब अर्थ ही नहीं है तो उसमें सत्य भी नहीं है। जो प्रिय तथा सत्य नहीं है उसमें शिव अर्थात् शुभ का कैसे निवास हो सकता है? आत्माभिव्यक्ति ही कला का प्राण है, आत्मा का प्रकटीकरण है, प्रत्यक्ष रूप है, इसलिए कला में सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् का अनुभव न हो, यह असंभव है। भारतीय कला–दर्शन तथा सौन्दर्य–दृष्टि का मूल तत्व ही **'सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम्'** है।

वेदों में रस और आनंद, रूप तथा रंग तथा संगीत तथा ऋक् (पद्य) है, सूक्ति तथा गाथा है तथा अंत में सत्–चित् आनंद है अर्थात् वह सब कुछ है जिससे कला का निर्माण होता है। वेद की कलादृष्टि में 'रूप' कला का सार है तथा रूप में लयविधान ही उसका सर्वस्व है। वेद में 'अर्थ–शून्य' कुछ भी नहीं है। कला अपने कौशल से अचेतन में चेतना का चमत्कार जगाती है तथा चैतन्य का यह चमत्कार ही 'अर्थ' है। भरतमुनि ने अपने कला–चिंतन में इस 'अर्थ' को ही नहीं स्वीकार किया, बल्कि कहा कि काव्यार्थ वह होता है जो हृदय–संवादी–प्रिय–सुंदर हो। ऐसा काव्यार्थ मन की गंभीर वेदनाओं का स्पर्श करता है जिससे मन में भावनाओं के उद्रेक से वह भावित अर्थात् रसनीय हो जाता है। यही रसानुभूति सौन्दर्य चेतना को जगाती है।

'समय' संसार का एकमात्र सत्य है, जो हमेशा गतिमान है। समय की इस गतिमानता के साथ परिवेश भी बदलता है और परिवेश के साथ–साथ मनुष्य में भी बदलाव आता है और उसके सौन्दर्य चेतना में भी। वैदिक काल के मनुष्य की सौन्दर्य–चेतना और रामायण काल के मनुष्य की सौन्दर्य–चेतना में बहुत अंतर है। वेदकालीन मनुष्य का मन जहाँ प्रकृति के दिव्य और आध्यात्मिक रूपों में रमण करता था, वहाँ रामायण युग में सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है। लोगों के सामने सत्य–असत्य, नैतिक–अनैतिक आदि कितनी समस्याएँ उत्पन्न हो गई थी। इन समस्याओं से टकराता हुआ वह हार रहा था। इनको एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इनकी समस्याओं का समाधान कर सकता था। उन समस्याओं में समंजन बिठा सकता था। राम का जीवन इन समस्याओं के समाधान का प्रयास था। अतः मानव ने सारी की सारी सौन्दर्य की आभा राम में ही दिखी। यहाँ वेदकालीन दिव्य–सौन्दर्य, मानव शरीर के सौन्दर्य में बदल गया। वैदिक युग की अनुभूति को दिव्य सौन्दर्य कहें तो रामायण काल की अनुभूति को मानव सौन्दर्य कह सकते है। मानव के आंतरिक सौन्दर्य पर ज्यादा बल दिया गया। अतः सौन्दर्य का वर्णन करते हुए रामायणकार ने सौन्दर्य शब्द के बदले रमणीय, शोभन, चारु आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

शोभिताम शतश्चित्राम.....
दर्शनम् चित्रकुटस्य मंदाकिनाश्च शोभने।
अधिक पुरवासाच्च मनये च तवदर्शनात्।।

अर्थात् हे शोभने! तुम्हारे साहचर्य के कारण चित्रकूट और मंदाकिनी का दर्शन अयोध्या निवास से अधिक सुखकर प्रतीत होता है। इसके साथ–साथ रामायण की सौन्दर्य चेतना में शोक का भी स्थान है। राम शोक में डूबे रहकर हर विसंगति का विरोध करते हैं। राम की करुणा और शोक उदात्त होने के कारण वह आनंद की अनुभूति उत्पन्न करती है। करुणा में भी सौन्दर्य की आभा फूटती है। आनन्द की अनुभूति में राम का उदात्त शोक उसका तत्त्व है और सौन्दर्य में करुणा को उचित स्थान देना रामायण का महत्व है।

महाभारत का सौन्दर्य **'कर्म और संघर्ष'** का सौन्दर्य है, जिसमें शांत रस की एक अपूर्व धारा प्रवाहित रही है। महाभारत काल में भोग की अनंत लालसा, ऐश्वर्य का मद एक और कौरवों में है तो दूसरी ओर पाण्डवों के पास नीति, धर्म का मर्यादा का बंधन है। कौरव के पास भूख की लालसा, ऐश्वर्य का मद इसलिए था कि उन्हे संसार की विराटता का ज्ञान न था, जो ज्ञान अर्जुन को प्राप्त था। संसार का रहस्य और अनंतता का ज्ञान होने के बाद व्यक्तिगत सुख–दुःख, माया–मोह, जय–पराजय आदि सब तुच्छ लगता है। जीवन में विराट दृष्टि से मोह दूर हो जाता है, आँखे उज्ज्वल और तेज

युक्त, गति में वीरता और हृदय में एक अद्‌भुत प्रसाद का आविर्भाव होता है। व्यास ने इस गंभीर अनुभव को शांति कहा है। इस शांतता के अनुभव के बाद वह वैरागी बन जाता है, फिर वह संघर्ष करता रहता है, कर्म करता रहता है और फल की आशा नहीं रखता। कृष्ण ने गीता में कहा है–**'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषुकदाचन।'** यहाँ वैरागी होने का मतलब संसार को छोड़कर पर्वत शिखर एवं वनों में रहना नहीं है। सांसारिक जीवन में रहकर संघर्ष करते हुए वैरागी होना और शांति का अनुभव करना है, जिसमें से सौन्दर्य की एक अद्‌भुत आभा फूटती है।

इस प्रकार भारतीय कला–चिन्तन में मन की सात्विक भावना पर बल दिया गया। भारतीय दृष्टि में मन अन्तर्मुखी होकर सत्य तथा आत्मा के प्रत्यक्षीकरण से शांति का अनुभव करता है जो सत्य, शिव तथा सुंदर है। मन की रजोगुण तथा तमोगुण वृत्तियाँ सत्य में लीन होकर आत्म–प्रत्यक्ष करती हैं जिससे मन अखण्ड हो जाता है, इसीलिए भारतीय आचार्यों ने कहा है, **'अखण्ड बुद्धि समास्वाद्यं काव्यम्'।** यह अखण्डता रूप में प्रतिरूपित होता है। रूप का सृजन ही कलात्मक सृजन है जिसकी अनुभूति कला की अनुभूति है। कलाकार रूप का स्थूल माध्यमों से लय के चमत्कार द्वारा सृजन करता है जिसके श्रेष्ठ उदाहरण नटराज, कोणार्क की मूर्तियों तथा अजंता ऐलोरा की कला में मिलते है जहाँ जड़ता का कहीं भी दर्शन नहीं होता।

पंचगंगेश शास्त्री ने 'सौन्दर्यशास्त्र को रसानुभूति से प्राप्त आनंद का दार्शनिक विवेचन' कहा है। **के. एस. रामस्वामी शास्त्री** के अनुसार, 'सौन्दर्यशास्त्र कला में अभिव्यक्त सौन्दर्य का विज्ञान है। **के.सी. पाण्डेय** के अनुसार, 'सौन्दर्यशास्त्र ललितकलाओं का विज्ञान तथा दर्शन है। 'भारतीय सौन्दर्य–दृष्टि व्यापक और उदार होने के कारण जीवन के सभी क्षेत्रों में अन्तर्प्रविष्ट है, वैदिक यज्ञ में सामगान और वेदिकाओं के निर्माण से लेकर प्रत्येक लोक–अनुष्ठान तक सुंदर तथा लोक शुभत्व की भावना से ओतप्रोत है।

भारतीय विचारकों का एक वर्ग सौन्दर्यशास्त्र को काव्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र आदि का पर्याय मानता है, किन्तु काव्यशास्त्र का अध्ययन काव्य तक सीमित है तथा सौन्दर्यशास्त्र समस्त कलाओं का शास्त्र है। सौन्दर्यशास्त्र की सीमा काव्य के साथ काव्येतर कलाओं (स्थापत्य, मूर्ति, चित्र तथा संगीत) तक विस्तृत है, इसीलिए सौन्दर्यशास्त्र मात्र काव्यशास्त्र नहीं बल्कि कलाशास्त्र हैं।

इस प्रकार ऐतिहासिक अध्ययन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि सौन्दर्यशास्त्र केवल पाश्चात्य देशों में ही विकसित नहीं हुआ है बल्कि भारतवर्ष में इसकी स्पष्ट परम्परा है। इस परम्परा को ध्यान में रखते हुए भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की कुछ अनन्य विशेषताएँ है जैसे भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में आनन्द और रस की धारणा अथवा अभिनवगुप्त द्वारा निरुपित काव्य तत्वों के बीच 'चारुत्व प्रतीति' की धारणा है। कहने का आशय है कि सौन्दर्यशास्त्र का स्वतंत्र विकास ललितकलाओं के अपने शास्त्रों तथा विशेषकर काव्यशास्त्र के विकास के पश्चात् हुआ है। डॉ. कुमार विमल ने कहा है कि सौन्दर्यशास्त्र काव्यशास्त्र का ही विकसित रूप है। पाश्चात्य तथा पूर्वी काव्यशास्त्रीय परम्पराओं में काव्यशास्त्र के विश्लेषण का प्रधान विषय सौन्दर्य ही है जो सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन का भी मूलाधार है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में 'ब्यूटी', 'एक्सीलेन्स', 'सब्लाइम' आदि तथा भारतीय काव्यशास्त्र के 'चारुता', 'चमत्कार', 'वक्रता', 'औचित्य', 'अलंकार', 'रस', 'लावण्य', 'रमणीयता' आदि शब्द भेद से सौन्दर्य के ही पर्याय है।

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइयें।

   i) सौन्दर्यशास्त्र को 'ललितकलाओं का दर्शन' किसने कहा है। (हीगेल ने/क्रौंचे ने)

   ii) 'द फिलॉसफी ऑफ फाइन आर्ट' किसने लिखा है। (हीगेल ने/क्रौंचे ने)

   iii) सौन्दर्यशास्त्र काव्यशास्त्र का ही विकसित रूप है। (डॉ. कुमारविमल/पंचगंगेश)

2. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

   i) महाभारत का सौन्दर्य.....सौन्दर्य है। (कर्म और संघर्ष का/धर्म और संघर्ष)

   ii) 'सौन्दर्यशास्त्र को रसानुभूति से प्राप्त आनंद का दार्शनिक विवेचन'..... कहा है। (पंचगंगेश शास्त्री ने/मम्मट ने)

   iii) सौन्दर्यशास्त्र में .....सौन्दर्य पर विचार किया जाता है। (तीन प्रकार के/चार प्रकार के)

बोध प्रश्न–2

1. सौन्दर्यशास्त्र का व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा पर विचार कीजिए।

   .....

   .....

अभ्यास प्रश्न

सौन्दर्यशास्त्र की रूपरेखा पर विस्तृत विचार कीजिए।

6.4 सारांश

प्रिय छात्रो! आपने प्रस्तुत इकाई में अध्ययन किया है – सौन्दयशास्त्रीय अध्ययन में प्रतिबोधन या प्रत्यक्षीकरण को प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि सौन्दर्यशास्त्र का सर्वाधिक सम्बन्ध मूल्य बोध के साथ है। सौन्दर्यशास्त्र को तभी से भिन्न–भिन्न ढंग से परिभाषित करने की चेष्टा की गयी है। इसे सुन्दर का विज्ञान, आस्वादन का दर्शन, ललितकलाओं का विज्ञान या अभिव्यक्ति का विज्ञान कहकर व्यपदिष्ट किया गया है। सौन्दर्यशास्त्र के निष्कर्ष प्रायः सभी ललित कलाओं को दृष्टि में रखकर निकाले जाते हैं।

6.5 शब्दावली

आस्वादन – रस का बोध

अलंकार – सौन्दर्य

विज्ञान – विशेष ज्ञान

अभिव्यक्ति – प्रकट करना

6.6 कुछ उपयोगी पुस्तके

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र व्याख्या. व्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहर चन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973
- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुक नाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय, चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2007
- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वरनाथ मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979
- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद् काशी वि. सं. 2007
- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,

- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

ENGLISH REFERENCE

1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored Aspects of the Rasa Theory,**vidyanidhi Prakashan, ed.1906
2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**.,Firma KLM PVT Ltd.Calcutta,1976.
3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta;** chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1968
4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**,MLBD,Delhi,f.ed. 1961
5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928
6) V.Raghvan, **The Number of Rasas,** University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940
7) V.Raghvan,**Some Concepts of Alankar Shastras**, Adyar Library, Adyar, 1942

6.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) (i) हीगेल ने (ii) हीगेल ने (iii) डॉ. कुमारविमल

ख) कर्म और संघर्ष का (ii) पंचगंगेश शास्त्री ने (iii) तीन प्रकार के

बोध प्रश्न 2

1. 'ऐस्थेटिक' शब्द यूनानी भाषा से लिया गया है जिसका मूल रूप 'Atoantikos' है। यही यूनानी शब्द बाद में 'ऐस्थेसिस' हुआ जिसका अर्थ है–'ऐन्द्रिय सुख की चेतना'। इसी 'ऐस्थेसिस शब्द से 'ऐस्थेटिक' शब्द बना। हिन्दी भाषा में इसे 'सौन्दर्यशास्त्र' या 'नन्दनशास्त्र' के रूप में जाना जाता है। 'ऐस्थेटिक्स' का शाब्दिक अर्थ है–ऐन्द्रिय प्रत्यक्षों का ज्ञान के माध्यम से किया गया अध्ययन। बाद में 'ऐस्थेटिक्स' उस शास्त्र को कहा जाने लगा जो ऐन्द्रिय बोध से प्राप्त सौन्दर्यानुभूति के आत्मिक आनंद का विश्लेषण करता है। प्रारम्भ में सौन्दर्यशास्त्र दर्शनशास्त्र का ही एक अंग था। इसे तत्व दर्शन, आचार–शास्त्र तथा मनोविज्ञान ने प्रभावित किया जिससे इसका स्वरूप विकसित होता गया। सौन्दर्यशास्त्र में चाक्षुष एवं श्रवण दोनों ऐन्द्रिय बोधों की प्रमुखता रही है क्योंकि समस्त इन्द्रियों में से ये दो इन्द्रियाँ ही सत्य के अधिक निकट है। इसके अतिरिक्त सौन्दर्यशास्त्र में तीन प्रकार के सौन्दर्य पर विचार किया जाता है–

    1. ऐन्द्रिय सौन्दर्य
    2. विधानगत सौन्दर्य
    3. अभिव्यक्ति सौन्दर्य

पश्चिम में भी 18 वीं शताब्दी से पूर्व इस प्रकार के शास्त्र का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। 'ऐस्थेटिक' शब्द का प्रथम अर्थ विकास 'ऐस्थटिक वह शास्त्र है, जिसका संबंध कला और प्रकृति में व्याप्त समग्र 'सुन्दर' तथा 'उदात्त' के रूप में हुआ। 1750 ई. में जर्मन विद्वान ऐलेक्जेण्डर बाउमगार्टेन ने इसे दर्शनशास्त्र की एक शाखा के रूप में स्वीकार किया तथा अपने ग्रंथ 'ऐस्थेटिक' में सौन्दर्य तथा कला का क्रमबद्ध विवेचन करने वाले इस शास्त्र को सौन्दर्यशास्त्र के नाम से संबोधित किया। अब तक दार्शनिकों ने ऐसे किसी शास्त्र की कल्पना नहीं की थी। कहीं–कहीं विभिन्न कलाओं के विषय में चितंन की परम्परा अवश्य प्राचीन थी, किन्तु बाउमगार्टेन ने ही इसे सर्वप्रथम एक शास्त्र के रूप में सौन्दर्यशास्त्र ऐन्द्रिय ज्ञान का विज्ञान है कहकर परिभाषित किया। काण्ट ने संवेदनाओं के दार्शनिक विवेचन को सौन्दर्यशास्त्र कहा। समस्त कलाओं में निहित सामान्य आधारभूत तत्वों के दर्शन के रूप में सौन्दर्यशास्त्र के अर्थ–निर्धारण का समर्थ प्रयास जर्मन विद्वान हीगेल ने किया। इन्होंने अपने ग्रंथ 'द फिलॉसफी ऑफ फाइन आर्ट' में कहा है कि सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध सौन्दर्य के संपूर्ण क्षेत्र से माना जा सकता है तथापि वास्तविक अर्थ में सौन्दर्यशास्त्र का संबंध ललितकलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौन्दर्य से है न कि अन्य माध्यमों से अभिव्यक्त सौन्दर्य से है। हीगेल ने सौन्दर्यशास्त्र को 'ललितकलाओं का दर्शन' कहा है, इसीलिए कुछ विचारक 'ऐस्थेटिक्स' को 19 वीं शताब्दी का हीगेलीय आविष्कार मानते है। हीगेल ने अपनी प्रतिभा के बल पर बिखरे हुए सूत्रों को व्यवस्थित करके एक विराट सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया था। हीगेल के पश्चात् जर्मन विद्वान क्रौचें ने सौन्दर्यशास्त्र को स्वतंत्र एवं स्वतः संपूर्ण विचार प्रणाली के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने 'ऐस्थेटिक' को अभिव्यक्ति की पुनः प्रत्यक्षात्मक तथा कल्पनात्मक क्रियाओं का विज्ञान माना। इनके मतानुसार सौन्दर्यशास्त्र का विषय मानव की कल्पना, पुनः प्रत्यक्ष तथ्ज्ञा अभिव्यक्ति से संबंधित है। सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा में मनोवैज्ञानिक विचारक फैचनर (1801–1887) ने सौन्दर्यशास्त्र का संबंध मनोविज्ञान या प्रयोगात्मक अनुभव से जोड़कर इसे नयी दिशा दी तथा प्रयोगात्मक सौन्दर्यशास्त्र की स्थापना की। इस दृष्टि से सौन्दर्यशास्त्र को सौन्दर्य की अनुभूति या अनुभूति या आनंद तथा कला–सृजन या कलाकृति का अध्ययन कने वाला शास्त्र कहा गया। तत्पश्चात् मार्क्सवादी विचारधारा में सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक आर्थिक विकास के ऐतिहासिक संदर्भ में सौन्दर्यबोध का अध्ययन किया गया, किंतु यह मत समाजवादी अधिक था। आधुनिक युग में दार्शनिक सौन्दर्यशास्त्र के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई तथा समस्त विचारों में संतुलन का प्रयास किया गया। इनमें लैंगर प्रमुख है। लैंगर के अनुसार 'सौन्दर्यशास्त्र ललितकलाओं के दार्शनिक विकल्पों तथा समस्याओं का सैद्धान्तिक निरूपण है। लैंगर ने सौन्दर्यशास्त्र का संबंध अभिव्यक्ति से नहीं माना। उन्होंने कला के प्रभाव–पक्ष के विवेचन–विश्लेषण को ही प्रधान विवेच्य विषय माना।

अभ्यास प्रश्न–

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं दे।